

## जन-जन की श्रद्धा के प्रतीक भगवान् गोम्मटेश

—सुमतप्रसाद जैन

जैन धर्म के आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव के परमपराक्रमी पुत्र, पोदनपुर नरेश, प्रथम कामदेव, तद्भव मोक्षगामी बाहुबली की दक्षिण भारत में गोम्मटेश के रूप में वन्दना की जाती है। भगवान् श्री ऋषभदेव की रानी यशस्वती ने भरत आदि सौ श्रेष्ठ पुत्र एवं कन्यारत्न ब्राह्मी को जन्म दिया। दूसरी रानी सुनन्दा से सुन्दरी नामक कन्या एवं पुत्र बाहुबली का जन्म हुआ ! सुन्दरी और बाहुबली को पाकर रानी सुनन्दा ऐसी सुशोभित हुई जैसे पूर्व दिशा प्रभा के साथ-साथ सूर्य को पाकर सुशोभित होती है। सुन्दर एवं हृष्ट-पुष्ट बालक बाहुबली को देखकर नगर-जन मुग्ध हो जाते थे। नगर की स्त्रियाँ उसे मनोभव, मनोज मनोभू, मन्मथ, अंगज, मदन आदि नामों से पुकारती थीं। अष्टमी के चन्द्रमा के समान बाहुबली के सुन्दर एवं विस्तृत ललाट को देखकर ऐसा लगता था मानो ब्रह्मा ने राज्यपट्ट को बांधने के लिए ही उसे इतना विस्तृत बनाया है। बाहुबली के वक्षस्थल पर पांच सौ चार लड़ियों से गुम्फित विजयछन्द हार इस प्रकार शोभायमान होता था जैसे विशाल मरकत मणि पर्वत पर असंख्य निर्झर प्रवाहित हो रहे हों।

भगवान् ऋषभदेव ने स्वयं अपने सभी पुत्र-पुत्रियों को सभी प्रकार की विद्याओं का अभ्यास एवं कलाओं का परिज्ञान कराया। कुमार बाहुबली को उन्होंने विशेष कामनीति, स्त्री-पुरुषों के लक्षण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, घोड़ा-हाथी आदि के लक्षण जानने के तन्त्र और रत्न परीक्षा आदि के शास्त्रों में निपुण बनाया। सुन्दर वस्त्राभूषणों से सज्जित, विद्याध्ययन में तल्लीन ऋषभ-सन्तति को देखकर पुरजन पुलकित हो उठते थे। आचार्य जिनसेन ने इन पुत्र-पुत्रियों से शोभायमान भगवान् ऋषभदेव की तुलना ज्योतिषी देवों के समूह से घिरे हुए ऊंचे मेरुपर्वत से की है।

उन सब राजकुमारों में तेजस्वी भरत सूर्य के समान सुशोभित होते थे और बाहुबली चन्द्रमा के समान शेष राजपुत्र ग्रह, नक्षत्र तथा तारागण के समान शोभायमान होते थे। ब्राह्मी दीप्ति के समान और सुन्दरी चांदनी के समान कान्ति बिखेरती थीं।

भगवान् ऋषभदेव को कालान्तर में नीलांजना अप्सरा का नृत्य देखते-देखते संसार से वैराग्य हो गया। उन्होंने महाभिनिष्क्रमण के समय अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत का राज्याभिषेक कराकर युवराज पद पर बाहुबली को प्रतिष्ठित किया। शेष पुत्रों के लिए भी उन्होंने विशाल पृथ्वी का विभाजन कर दिया। राजा भरत ने सम्पूर्ण पृथ्वीमंडल को एकछत्र शासन के अन्तर्गत संगठित करने की भावना से दिग्विजय का अभियान किया। उन्होंने अपने परम पौरुष से हिमवान् पर्वत से लेकर पूर्व दिशा के समुद्र तक और दक्षिण समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक समस्त पृथ्वी को वश में कर चक्रवर्ती राज्य की प्रस्थापना की।

साठ हजार वर्ष की विजय यात्रा के उपरान्त सम्राट् भरत ने जब अपनी राजधानी अयोध्या नगरी में प्रवेश किया, उस समय सेना की अग्रिम पंक्ति में निर्बाध रूप से गतिशील चक्ररत्न सहसा रुक गया। सम्राट् भरत इस घटना से विस्मित हो गए। उन्होंने अपने पुरोहित एवं मन्त्रियों से प्रश्न किया कि अब क्या जीतना शेष रह गया है? निमित्तज्ञानी पुरोहित ने युक्तिपूर्वक निवेदन किया कि आपके भाइयों ने अभी तक आपकी आधीनता स्वीकार नहीं की है।

चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना में संलग्न महाबाहु भरत को यह विश्वास था कि उनके सहोदर उनकी आधीनता को स्वीकार कर लेंगे। किन्तु स्वतन्त्रता प्रेमी सहोदरों द्वारा भरत को इस भूतल का एकमात्र अधिपति न मान पाने के कारण सम्राट् भरत को क्रोध हो आया। उनके मन में यह विश्वास हो गया कि यद्यपि उनके सौ भाई हैं, किन्तु वे सभी स्वयं को अवध्य मानकर प्रणाम करने और मेरी आधीनता मानने से विमुख हो रहे हैं। निमित्तज्ञानी पुरोहित की मन्त्रणा से अनुज बन्धुओं को अनुकूल बनाने के लिए विशेष दूत भेजे गए। बाहुबली के अति-रिक्त सम्राट् भरत के शेष अन्य सहोदरों ने पिता के न होने पर बड़ा भाई ही छोटे भाइयों के द्वारा पूज्य होता है, ऐसा मानकर अपने पिताश्री से मार्गदर्शन लेने का निर्णय किया। उन्होंने कैलाश पर्वत पर स्थित जगतवन्दनीय भगवान् ऋषभदेव के पावन चरणों की वन्दना के पश्चात् उनसे निवेदन किया—

त्वत्प्रणामानुरक्तानां त्वत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणाम् । त्वद्वचःकिकराणां नो यद्वा तद्वास्तु नापरम् ॥ (आदिपुराण, पर्व ३४/१०२)

अर्थात् आपको प्रणाम करने में तत्पर, हम लोग अन्य किसी की उपासना नहीं करना चाहते । तीर्थंकर ऋषभदेव ने अपने धर्मपरायण पुत्रों का मार्गदर्शन करते हुए कहा—

भंगिना किमु राज्येन जीवितेन चलेन किम् । किं च मो यौवनोन्मादैरैश्वर्यबलदूषितैः ॥  
 किं च भो विषयास्वादः कोऽप्यनास्वादितोऽस्ति वः । स एव पुनरास्वादः किं तेनास्त्याशितंभवः ॥  
 यत्र शस्त्राणि मित्राणि शत्रवः पुत्रबान्धवाः । कलत्रं सर्वभोगीणा धरा राज्यं धिगीदृशम् ॥  
 तदलं स्पृहया दध्वं यूयं धर्ममहातरोः । दयाकुसुममम्लानि यत्तन्मुक्तिफलप्रदम् ॥  
 पराराधनदैन्येन परैराराध्यमेव यत् । तद्वी महाभिमानानां तपो मानाभिरक्षणम् ॥  
 दीक्षा रक्षा गुणा भृत्या दयेयं प्राणवल्लभा । इति ज्याय स्तपोराज्यमिदं श्लाघ्यपरिच्छदम् ॥ (आदिपुराण, पर्व ३४)

अर्थात् हे पुत्रो, इस विनाशी राज्य से क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? इस राज्य के लिए ही शस्त्र मित्र हो जाते हैं, पुत्र और भाई शत्रु हो जाते हैं तथा सबके भोगने योग्य पृथ्वी ही स्त्री हो जाती है। ऐसे राज्य को धिक्कार हो। तुम लोग धर्म वृक्ष के दयारूपी पुष्प को धारण करो जो कभी भी म्लान नहीं होता और जिस पर मुक्तिरूपी महाफल लगता है। उत्तम तपश्चरण ही मान की रक्षा करने वाला है। दीक्षा ही रक्षा करने वाली है, गुण ही सेवक है, और यह दया ही प्राणप्यारी स्त्री है। इस प्रकार जिसकी सब सामग्री प्रशंसनीय है ऐसा यह तपरूपी राज्य ही उत्कृष्ट राज्य है। भगवान् ऋषभदेव के मुखारविन्द से सांसारिक सुखों की नश्वरता और मुक्ति लक्ष्मी के शाश्वत सुख के उपदेशामृत का श्रवण कर भरत के सभी अनुजों ने दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर ली। स्वतन्त्रता प्रेमी पोदनपुर नरेश बाहुबली अब सम्राट् भरत के लिए एकमात्र चिन्ता का कारण रह गये।

सम्राट् भरत अपने अनुज बाहुबली के बुद्धिचानुर्य एवं रणकौशल से अवगत थे। आदिपुराण के पैंतीसवें पर्व (पद्य ६-७) में वह बाहुबली को तरुण बुद्धिमान्, परिपाटी विज्ञ, विनयी, चतुर और सज्जन मानते हैं। पद्य ८ में वे बाहुबली की अप्रतिम शक्ति, स्वाभिमान, भुजबल की प्रशंसा करते हैं। बाहुबली के सम्बन्ध में विचार करते हुए सम्राट् भरत का मन यह स्वीकार करता है कि वह नीति में चतुर होने से अभेद्य है, अपरिमित शक्ति का स्वामी होने के कारण युद्ध में अजेय है, उसका आशय मेरे अनुकूल नहीं है, इसलिए शान्ति का प्रयोग भी नहीं किया जा सकता। अर्थात् बाहुबली के सम्बन्ध में भेद, दण्ड और साम तीनों ही प्रकार के उपायों से काम नहीं लिया जा सकता। अपभ्रंश कवि स्वयम्भूदेव एवं पुष्पदन्त ने महाबली बाहुबली की अपरिमित शक्ति से सम्राट् भरत को अवगत कराने के लिए क्रमशः मंत्री एवं पुरोहित का विधान किया है। महाकवि स्वयम्भू के पउमचरिउ का मन्त्री राजाधिराज भरत से कहता है—

पोअण-परमेसरु चरम-देहु । अखलिय-मरट्टु जयलच्छि-गेहु ॥  
 दुव्वार-वइरि-वीरन्त-कालु । णामेण बाहुबलि बल-विसालु ॥  
 सीहु जेम पक्खरियउ खन्तिएँ धरियउ जइ सो कह वि वियट्टइ ।  
 तो सहुँ खन्धावारें एक्क-पहारें पइ मि देव दलवट्टइ ॥ (पउमचरिउ, चौथी सन्धि २/६-९)

अर्थात् पोदनपुर का राजा और चरमशरीरी, अस्खलितमान और विजय लक्ष्मी का घर, दुर्ज्येय शत्रुओं के लिए यम, दल में महान्, नाम से बाहुबली, सिंह की तरह संनद्ध परम क्षमाशील वह यदि किसी तरह विघटित होता है तो हे देव, वह स्कंधावार सहित आपको भी एक ही प्रहार में चूर-चूर कर देगा।

महाकवि पुष्पदन्त ने 'महापुराण' (सन्धि १६/११) में चतुर पुरोहित के द्वारा बाहुबली की साधन सम्पन्नता एवं शौर्य से राजा भरत को परिचित कराते हुए कहा है कि बाहुबली के पास कोश, देश, पदभक्त, परिजन, सुन्दर अनुरक्त अन्तःपुर, कुल, छल-बल, सामर्थ्य, पवित्रता, निखिलजनों का अनुराग, यशकीर्तन, विनय, विचारशील बुध संगम, पौरुष, बुद्धि, ऋद्धि, देवीद्यम, गज, राजा, जंगम महीधर, रथ, करभ और तुरंगम हैं।

इस प्रकार की अकल्पित स्थिति के निवारण के लिए बाहुबली के पास दूत मन्त्री भेजने का निर्णय लिया गया। महाकवि स्वयम्भू के अनुसार राजा भरत ने अपने मन्त्रियों को परामर्श दिया कि वे बाहुबली को उनकी आज्ञा स्वीकार करने का आदेश दें और यदि वह मेरे प्रभुत्व को स्वीकार न करे तो इस प्रकार की युक्ति निकाली जाए जिससे हम दोनों का युद्ध अनिवार्य हो जाए। महाकवि पुष्पदन्त के पुरोहित ने सम्राट् भरत को परामर्श दिया कि आप उसके पास दूत भेजें। यदि वह आपको नमन करता है तो उसका पालन किया जाए अन्यथा बाहुबली को पकड़ लिया जाए और उसे बांधकर कारागार में डाल दिया जाए।

आदिपुराण का सम्राट् भरत बाहुबली द्वारा आधीनता न स्वीकार करने पर दुःखी है और उसकी समझ में यह नहीं आ रहा है कि मेरे अनुज बाहुबली ने ऐसा क्यों किया ? उसने बाहुबली को अपने अनुकूल बनाने के लिए निःसृष्टार्थ राजदूत की विशेष रूप से नियुक्ति की। आचार्य पुष्पदन्त के अनुसार भरत के दूत को राजद्वार पर देखकर प्रतिहार ने बाहुबली को सूचित किया कि द्वार पर राजा भरत का दूत खड़ा है। हे स्वामी ! अवसर है, आप 'हाँ-ना' कुछ भी कह दें। किन्तु महाप्राण बाहुबली ने क्षत्रियोचित गरिमा के अनुकूल प्रतिहार से कहा —“मना मत करो ! भाई के अनुचर को शीघ्र प्रवेश दो !” आदिपुराण का निःसृष्टार्थ राजदूत सरस्वती एवं लक्ष्मी से मंडित परमसुन्दर बाहुबली की अपूर्व कान्ति को देखकर मुग्ध हो गया। बाहुबली के सौन्दर्य में उसे तेज रूप परमाणुओं का दर्शन हुआ। चतुर राजदूत की कूटनीति को विफल करते हुए युवा बाहुबली ने आक्षेप सहित कहा—

प्रेम और विनय ये दोनों परस्पर मिले हुए कुटुम्बी लोगों में ही सम्भव हो सकते हैं। बड़ा भाई नमस्कार करने योग्य है यह बात अन्य समय में अच्छी तरह हमेशा हो सकती है परन्तु जिसने मस्तक पर तलवार रख छोड़ी है उसको प्रणाम करना यह कौन-सी रीति है ? तेजस्वी मनुष्यों के लिए जो कुछ थोड़ा-बहुत अपनी भुजारूपी वृक्ष का फल प्राप्त होता है वही प्रशंसनीय है, उनके लिए दूसरे की भौंहरूपी लता का फल अर्थात् भौंह के इशारे से प्राप्त हुआ चार समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का ऐश्वर्य भी प्रशंसनीय नहीं है। जो पुरुष राजा होकर भी दूसरे के अपमान से मलिन हुई विभूति को धारण करता है निश्चय से उस मनुष्यरूपी पशु के लिए उस राज्य की समस्त सामग्री भार के समान है। वन में निवास करना और प्राणों को छोड़ देना अच्छा है किन्तु अपने कुल का अभिमान रखने वाले पुरुष को दूसरे की आज्ञा के अधीन रहना अच्छा नहीं है। धीर-वीर पुरुषों को चाहिए कि वे इन नश्वर प्राणों के द्वारा अपने अभिमान की रक्षा करें क्योंकि अभिमान के साथ कमाया हुआ यश इस संसार को सदा सुशोभित करता है।

सम्राट् भरत की राज्यलिप्सा का विरोध करते हुए बाहुबली स्पष्ट शब्दों में कहते हैं —

दूत तातवित्तीर्णा नो महीमेनां कुलोचिताम् । भ्रातृजायामिवाऽऽदित्सोर्नास्य लज्जा भवत्पतेः ।

देयमन्यत् स्वतन्त्रेण यथाकामं जिगं पुणा । मुक्त्वा कुलकलत्रं च क्षमातलं च भुजाजितम् ।

भूयस्त दलमालप्य स वा भुङ्क्तां महीतलम् । चिरमेकातपत्राडकमहं वा भुजविक्रमी । (आदिपुराण पर्व ३५)

हे दूत, पिताजी के द्वारा दी हुई यह हमारे ही कुल की पृथ्वी भरत के लिए भाई की स्त्री के समान है। अब वह उसे ही लेना चाहता है ! तेरे ऐसे स्वामी को क्या लज्जा नहीं आती ? जो मनुष्य स्वतन्त्र हैं और इच्छानुसार शत्रुओं को जीतने की इच्छा रखते हैं वे अपने कुल की स्त्रियों और भुजाओं से कमाई हुई पृथ्वी को छोड़कर बाकी सब कुछ दे सकते हैं। इसलिए बार-बार कहना व्यर्थ है, एक छत्र से चिह्नित इस पृथ्वी को वह भरत ही चिरकाल तक उपभोग करे अथवा भुजाओं में पराक्रम रखने वाला मैं ही उपभोग करूँ। मुझे पराजित किये बिना वह इस पृथ्वी का उपभोग नहीं कर सकता। महाकवि स्वयंभू के 'पउमचरिउ' का मन्त्री राजा बाहुबली को उत्तेजित करने के लिए कहता है कि जिस प्रकार अन्य भाई सम्राट् भरत की आज्ञा मानकर रहते हैं, उसी प्रकार आप भी रहिए। स्वाभिमानी बाहुबली उत्तर देते हैं कि यह धरती तो पिताजी की देन है। मैं किसी अन्य की सेवा नहीं कर सकता ; बाहुबली द्वारा अपने पक्ष का औचित्य सिद्ध करने और सम्राट् भरत की आधीनता न स्वीकार करने पर भरत के मन्त्रियों ने क्रोध के वशीभूत होकर बाहुबली के स्वाभिमान को ललकारते हुए कहा—

‘जइ वि तुज्जु इमु मण्डलु बहु-चिन्तिय-फलु आसि समप्पिउ वप्पे ।

गामु सीमु खलु खेत्तु वि सरिसव-मेत्तु वि तो वि णाहिं विणु कप्पे ॥ (पउमचरिउ)

अर्थात् यदि तुम समझते हो कि यह धरती-मण्डल तुम्हें पिताजी ने बहुत सोच-विचार कर दिया है, तो याद रखो गांव, सीमा, खलिहान और खेत, एक सरसों भर भी, बिना कर दिये तुम्हारे नहीं हो सकते।

महाभारत में भगवान् कृष्ण से कौरवराज दुर्योधन ने इसी प्रकार की दर्पपूर्ण भाषा का प्रयोग किया था। मन्त्री के प्रत्युत्तर में महा-पराक्रमी बाहुबली ने वीरोचित उत्तर देते हुए कहा—वह एक चक्र के बल पर गर्व कर रहा है। वह नहीं जानता कि चक्र से उसका मनोरथ सिद्ध नहीं होगा। मैं उसे युद्धक्षेत्र में ऐसा कर दूंगा जिससे उसका मान सदा के लिए चूर हो जाए।

महाकवि पुष्पदन्त के महाकाव्य का राजदूत सम्राट् भरत की अपरिमित शक्ति का विवेचन कर बाहुबली को युद्ध में पराजित होने का भय दिखलाकर भरत को कर देने का सुझाव देता है। स्वाभिमानी बाहुबली अपने आन्तरिक गुणों के अनुरूप राजदूत को गागर में सागर जैसा उत्तर देते हुए कहते हैं—

कंदप्पु अदप्पु ण होमि हउं दूययकरउ णिवारिउ ॥

संकप्पे सो महु केरण पहु डज्झिहइ णिवारिउ ॥ (महापुराण)

अर्थात् मैं कन्दर्प (कामदेव) हूँ, अदर्प (दर्पहीन) नहीं हो सकता। मैंने दूत समझकर मना किया है। मेरे संकल्प से वह राजा निश्चित रूप से दग्ध होगा।

प्रजावत्सल बाहुबली को भारत की सनातन संस्कृति का प्रतीक पुरुष माना जाता है। एक सिद्धान्तप्रिय राजा के रूप में वह राज्य के वर्चस्व को बनाए रखने के लिए अपने पराक्रमी अग्रज भ्राता से भी युद्ध करने को सन्नद्ध हो जाते हैं। एक ऐतिहासिक सत्य यह भी है कि महाकवि स्वयम्भू, आचार्य जिनसेन एवं महाकवि पुष्पदन्त के युग में पराक्रमी राजा अपने-अपने राज्यों की संस्कृति की रक्षा के लिए तत्पर रहते थे। शायद इसी कारण कन्नड भाषा के महाकवि पम्प (सन् ९४१ ई०) ने 'आदिपुराण' (कन्नड) में यश को ही राजा की एकमात्र सम्पत्ति घोषित किया है। इसीलिए भगवान् बाहुबली के विराट् व्यक्तित्व में ८वीं-९वीं शताब्दी के भारतीय इतिहास के प्राणवान् मूल्य स्वयमेव समाहित हो गए हैं। राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित अपराजेय बाहुबली राज्यलक्ष्मी के मद से पीड़ित राजा भरत के राजदूत के अनीतिपूर्ण प्रस्ताव की अवहेलना करके पोदनपुर के नगरजनों को अपने परिवार का अभिन्न अंग मानते हुए ओजपूर्ण वाणी में कहते हैं—

जं दिण्णं महेसिणा दुरियणासिणा णयरदेसमेत्तं ।

तं मह लिहियसासणं कुलविहूसणं हरइ को पहुत्तं ॥

केसरिकेसरु वरसइथणयलु

सुहडहु सरणु मज्झु धरणीयलु ।

जो हत्थेण छिवइ सो केहउ

कि कयंतु कालाणलु जेहउ ॥ (महापुराण)

अर्थात् पापों को नाश करने वाले महर्षि ऋषभ ने जो सीमित नगर देश दिये हैं वह मेरे कुलविभूषित लिखित शासन हैं, उस प्रभुत्व का कौन अपहरण करता है? सिंह की अयाल, उत्तम सती के स्तन तल, सुभट की शरण और मेरे धरणी तल को जो अपने हाथ से छूता है, मैं उसके लिए यम और कालानल के समान हूँ ?

पोदनपुर के सुखी नागरिक भी अपने राजा बाहुबली की लोककल्याणकारी नीतियों के अनुगामी थे। युद्ध का अवसर उपस्थित होने पर पोदनपुर के निवासियों में उत्साह का वातावरण बन गया। पोदनपुर की जनता के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए आचार्य जिनसेन ने कहा है, "जो पुरुष अवसर पड़ने पर स्वामी का साथ नहीं देते वे घास-फूस के बने हुए पुरुषों के समान सारहीन हैं।"

चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना में संलग्न सम्राट् भरत ने राजदूतों के विफल हो जाने पर स्वतन्त्रता-प्रेमी राजा बाहुबली के राज्य पोदनपुर पर चतुरंगिनी सेना के द्वारा घेरा डाल दिया।

महाकवि स्वयम्भू के अनुसार राजा बाहुबली के दूतों ने उसे भरत के युद्धाभियान की सूचना देते हुए कहा—शीघ्र ही निकलिये देव ! प्रतिपक्ष समुद्र की भांति वेगवान गति से बढ़ रहा है। अपने राज्य पर शत्रु-पक्ष के प्रबल आक्रमण को देखकर शूरवीर बाहुबली ने रणक्षेत्र में विशेष सज्जा की। महाकवि स्वयम्भू के अनुसार बाहुबली की एक ही सेना ने भरत की सात अशौहिणी सेना को क्षुब्ध कर दिया। रणक्षेत्र में एकत्रित सम्राट् भरत एवं पोदनपुर नरेश बाहुबली की सेनाओं में युद्ध हुआ अथवा नहीं, इस सम्बन्ध में जैन पुराणकारों में मतभेद है। आचार्य रविषेण (पद्मपुराण पर्व ४/६९) के अनुसार दोनों पक्षों में हाथियों के समूह की टक्कर से उत्पन्न हुए शब्द से युद्ध प्रारम्भ हुआ। उस युद्ध में अनेक प्राणी मारे गए। आचार्य जिनसेन ने हरिवंश पुराण (सर्ग ११/७९) में दोनों सेनाओं के मध्य विवता नदी के पश्चिमी भाग में हुई मूठ-भेड़ का उल्लेख किया है। महाकवि स्वयम्भू के पउमचरिउ (संघि ४/८/८) के अनुसार रक्तरंजित तीरों से दोनों सेनाएं ऐसी भयंकर हो उठीं मानो दोनों कुसुम्भी रंग में रंग गयी हों। महाकवि पुष्पदन्त के महापुराण के अनुसार दोनों सेनाओं की युद्ध सज्जा अभूतपूर्व थी और किसी भी क्षण पृथ्वी पर विराट् युद्ध होने की स्थिति बन गई थी। आचार्य जिनसेन के आदिपुराण में दोनों राजाओं की सेनाएं युद्धक्षेत्र में आ गई थीं किन्तु दोनों में युद्ध नहीं हुआ। उनके अनुसार युद्ध का श्रीगणेश होने से पहले ही दोनों पक्षों के मन्त्रियों ने आवश्यक मन्त्रणा के उपरान्त दोनों राजाओं को परस्पर तीन प्रकार के युद्ध—जलयुद्ध, दृष्टियुद्ध और बाहुयुद्ध के लिए तैयार कर लिया था। स्वयम्भू के 'पउमचरिउ', आचार्य जिनसेन के 'हरिवंश पुराण', पुष्पदन्त के 'महापुराण' के अनुसार दोनों पक्षों के मन्त्रियों ने देशवासियों के व्यापक हित और परिस्थितियों का आकलन करते हुए दोनों राजाओं से परस्पर तीन प्रकार के युद्ध करने का प्रस्ताव रखा था। युद्ध में पराक्रम एवं पौरुष के प्रदर्शन के लिए उत्सुक सेना को युद्ध-विराम का आदेश देने के लिए महाकवि पुष्पदन्त ने एक नाटकीय युक्ति का प्रयोग किया है—

बिहि बलहं मज्झ जो मुयइ बाण । तहु होसइ रिसहहु तणिय आण ॥

अर्थात् दोनों सेनाओं के बीच जो बाण छोड़ता है, उसे श्री ऋषभनाथ की शपथ।

प्रारम्भिक जैन साहित्य का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि युद्धक्षेत्र में दोनों पक्षों के निरपराध योद्धाओं को मृत्यु के मुख का आलिगन करते हुए देखकर उदारचेता बाहुबली ने स्वयं सम्राट् भरत के सम्मुख दृष्टि युद्ध का प्रस्ताव रखा था। आचार्य रविषेण के अनुसार

सम्राट् भरत के युद्धोन्मादजन्य परिणामों को दृष्टिगत करते हुए भुजाओं के बल से सुशोभित बाहुबली ने हँसकर राजा भरत से कहा कि इस प्रकार से निरपराध प्राणियों के वध से हमारा और आपका क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। उसने स्वयं एक महायोद्धा की भांति मानवीय समस्याओं के निदान के लिए अहिंसक युद्ध का प्रस्ताव राजा भरत के सम्मुख रखा—

अथोवाच विहस्यैवं भरतं बाहुविक्रमी । किं वराकेन लोकेन निहतेनामुनावयोः ॥

यदि निःस्पन्दया दृष्ट्या भवताहं पराजितः । ततो निजित एवास्मि दृष्टियुद्धे प्रवर्त्यताम् ॥ (पद्मपुराण, संधि ४/७०-७१)

जैन संस्कृति के पोषक राजा बाहुबली द्वारा युद्धक्षेत्र में निरपराध मनुष्यों के अनावश्यक संहार से बचने के लिए अहिंसात्मक युद्ध का प्रस्ताव तर्कसंगत लगता है। चक्रवर्ती राज्य की स्थापना में संलग्न आग्रहवादी सम्राट् भरत के लिए दिग्विजय अत्यावश्यक थी। इसीलिए उसे अपने प्राणप्रिय अनुज पर आक्रमण करना पड़ा। इसके विपरीत राजा बाहुबली का उद्देश्य अपने राज्य की प्रभुसत्ता को बनाए रखना था। राजा बाहुबली ने अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए कहा था—

पवसन्ते परम-जिणेसरेण । जं किं पि विहज्जेवि दिण्णु तेण ॥

तं अम्हहं सासणु सुह-णिहाणु । किउ विप्पिउ णउ केण वि समाणु ॥

सोपिहिमिहं हउं पोयणहों सामि । णउ देमि ण लेमि ण पासु जामि ॥

दिट्ठे ण तेण किर कवणु कज्जु ।

(पउमचरिउ, सन्धि ४/४)

अर्थात् दीक्षा लेते समय पिताजी ने बँटवारे में जितनी धरती मुझे दी थी, उस पर मेरा सुखद शासन है, किसी के साथ मैंने कुछ बुरा भी नहीं किया। वह भरत तो सारी धरती का स्वामी है, मैं तो केवल पोदनपुर का अधिपति हूँ, न तो मैं कुछ देता हूँ और न लेता हूँ और न उसके पास जाता हूँ। उससे भेंट करने में मेरा कौन-सा काम बनेगा ?

अतः आत्मविश्वास से मंडित पराक्रमी बाहुबली द्वारा पोदनपुर की अस्मिता की रक्षा के लिए स्वयं को दांव पर लगा देना असंगत नहीं है। वैसे भी बाहुबली को जैन पुराण शास्त्र में प्रथम कामदेव मना गया है। सौन्दर्यशास्त्र के रससिद्ध महापुरुष के लिए अपनी जन्मभूमि अयोध्या और अपने राज्यक्षेत्र पोदनपुर के निवासियों का युद्धोपरान्त दारुण दुःख देखा जाना सम्भव नहीं था। इसीलिए उन्होंने सम्राट् भरत से विजयी होने के लिए तीन प्रकार के युद्धों का प्रस्ताव स्वयं रखा था। आचार्य विमलसूरिकृत 'पउमचरिउ' और 'आवश्यकचूर्णि' की गाथाओं के अनुसार भी राजा बाहुबली ने लोककल्याण की भावना से अहिंसक युद्ध का प्रस्ताव रखा—

भणओ य बाहुबलिणा, चक्कहरो किं वहेण लायेस्स ।

दोणहं पि होउ जुज्झं, दिट्ठीमुट्ठीहिं रणमज्जे ॥ (पउमचरिउ, ४, ४३)

ताहे ते सव्वबलेण दो वि देसते मिलिया, ताहे

बाहुबलिणा भणियं—किं अणवराहिणा लोणेण

मारिएण ? तुमं अहं च दुयगा जुज्झामो । (आवश्यकचूर्णि, पृ० २१०)

सम्राट् भरत एवं राजा बाहुबली दोनों को अपने अप्रतिम शौर्य पर अगाध विश्वास था। इसीलिए दोनों चरमशरीरी महायोद्धा तीन प्रकार के प्रस्तावित युद्ध में अपनी शक्ति के परीक्षण के लिए सोत्साह मैदान में उतर गए। तीर्थंकर ऋषभदेव के इन दोनों बलशाली पुत्रों को युद्धक्षेत्र में देखकर आचार्य जिनसेन को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे निषध और नीलपर्वत पास-पास आ गए हों। उन्होंने युद्धोत्सुक बाहुबली एवं भरत की तुलना क्रमशः ऊँचे जम्बूवृक्ष एवं चूलिकासहित गिरिराज सुमेरु से की है। विजयलक्ष्मी के आकांक्षी सम्राट् भरत एवं बाहुबली के मध्य पूर्व निर्धारित तीनों युद्ध हुए। जैन पुराणकारों ने इन दोनों महापुरुषों के पराक्रम का अद्भुत वर्णन किया है। इनके युद्ध के प्रसंग में जैन काव्यकारों ने लौकिक एवं अलौकिक अनेक उपमानों का सुन्दर संयोजन किया है। सम्राट् भरत एवं राजा बाहुबली के दृष्टियुद्ध का विवरण देते हुए महाकवि स्वयम्भू ने लिखा है—

अवलौइउ भरहें पढमु माई । कइलासें कञ्चण-सइलु णाई ॥

असिय-सियायम्ब विहाइ दिट्ठि । णं कुवलय-कमल-रविन्द-विट्ठि ॥

पणु जोइउ बाहुबलीसरेण । सरे कुमुय-सण्डु णं दिणयरेण ॥

अवरामुह-हेट्टामुह-मुहाई । णं वर-वहु-वयण-सरोरुहाई ॥

उवरिल्लियएँ विसालएँ भिउडि-करालएँ हेट्ठिम दिट्ठि परज्जिय ।

णं णव-जोव्वणइत्ती चञ्चल-चित्ती कुलवहु इज्जएँ तज्जिय ॥ (पउमचरिउ, सन्धि ४/६)

अर्थात् उन्होंने (नन्दा और सुनन्दा के पुत्रों ने) दृष्टियुद्ध प्रारम्भ किया, सबसे पहले भरत ने अपने भाई को देखा, मानो कैलास पर्वत ने सुमेरु पर्वत को देखा हो। काले और सफेद बादलों के समान उसकी दृष्टि उस समय ऐसी शोभित हो रही थी मानो नीले और सफेद कमलों की वर्षा हो रही हो। उसके बाद बाहुबली ने भरत पर दृष्टिपात किया मानो सूर्य ने सरोवर में कुमुद-समूह को देखा हो। पराजित भरत का मुख उत्तम कुल-वधू की तरह सहसा नीचे झुक गया। बाहुबली की विशाल भौंहोंवाली दृष्टि से भरत की दृष्टि ऐसी नीची हो गयी जैसे सास से ताड़ित चंचलचित्त नवयौवना कुल-वधू नम्र हो जाती है।

दृष्टियुद्ध में पराजित होने पर भरत एवं बाहुबली में जल-युद्ध एवं बाहु-युद्ध भी हुए और इन दोनों युद्धों में भरत पराजित हो गए। राजा बाहुबली के मन में अपने अग्रज भ्राता के लिए असीम सम्मान भाव था। इसीलिए उन्होंने बाहु-युद्ध में विजयी होने पर पृथ्वी मंडल के विजेता राजा भरत को हाथों पर इस प्रकार से उठा लिया जैसे जन्म के समय बालजिन को इन्द्रराज ने श्रद्धा से बाहुओं पर उठा लिया था—

उच्चाइ उभय-करेहि णरिन्दु । सक्केण व जम्मणे जिण-वरिन्दु ॥

एत्थन्तरे बाहुबलीसरासु । आमेल्लिउ देवेहि कुसुम-वासु ॥ (पउमचरिउ, सन्धि ४/११)

राजा बाहुबली के जयोत्सव पर स्वर्ग के देवों ने हर्षातिरेकपूर्वक पुष्प वृष्टि की। सम्राट् भरत इस पराजय से हतप्रभ हो गये। लोक-नीति का त्याग करके उन्होंने अपने अनुज बाहुबली के पराभव के लिए अमोघ शस्त्र 'चक्ररत्न' का स्मरण किया। उदार बाहुबली पर 'चक्ररत्न' के प्रयोग को देखकर दोनों पक्षों के न्यायप्रिय योद्धाओं ने सम्राट् भरत के आचरण की निन्दा की। राजा बाहुबली चरमशरीरी थे। फलतः चक्ररत्न उनकी परिक्रमा करके सम्राट् भरत के पास निष्फल होकर लौट आया।

अपने अग्रज भरत की साम्राज्य लिप्सा एवं राज्यलक्ष्मी को हस्तगत करने के लिए स्वबन्धु पर चक्ररत्न के वज्रित प्रयोग को दृष्टिगत करते हुए परमकारुणिक अपरिग्रह मूर्ति बाहुबली में इस असार संसार के प्रति विरक्त भाव उत्पन्न हो गया। नीतिपरायण धर्मज्ञ सम्राट् भरत के इस अभद्र आचरण को देखकर बाहुबली सोचने लगे—

अचिन्तयच्च किन्नाम कृते राज्यस्य भंगिनः । लज्जाकरो विधिर्भात्राज्येष्टेनायमनुष्ठितः ॥

विपाककटुसाम्राज्यं क्षणध्वंसि धिगस्त्वदम् । दुस्त्यजं त्यजदप्येतदंगिभिर्दुष्कलत्रवत् ॥

कालव्यालगजेनेदमायुरालानकं बलात् । चाल्यते यद्वलाधानं जीवितालम्बनं नृणाम् ॥

शरीरवलमेतच्च गजकर्णवदस्थिरम् । रोगा खू पहतं चेदं जरद्देहकुटीरकम् ।

इत्यशाश्वतमप्येतद् राज्यादि भरतेश्वरः । शाश्वतं मन्यते कष्टं मोहोपहतचेतनः ॥

(आदिपुराण, पर्व ३६/७०-७१, ८८-९०)

अर्थात् हमारे बड़े भाई ने इस नश्वर राज्य के लिए यह कैसा लज्जाजनक कार्य किया है। यह साम्राज्य फलकाल में बहुत दुःख देने वाला है, और क्षणभंगुर है इसलिए इसे धिक्कार हो। यह व्यभिचारिणी स्त्री के समान है क्योंकि जिस प्रकार व्यभिचारिणी स्त्री एक पति को छोड़कर अन्य पति के पास चली जाती है उसी प्रकार यह साम्राज्य भी एक पति को छोड़कर अन्य पति के पास चला जाता है। जिसके बल का सहारा मनुष्यों के जीवन का आलम्बन है ऐसा यह आयुरूपी खम्भा कालरूपी दृष्ट हाथी के द्वारा जबरदस्ती उखाड़ दिया जाता है। यह शरीर का बल हाथी के कान के समान चंचल है और यह जीर्ण-शीर्ण शरीररूपी झोपड़ा रोगरूपी चूहों के द्वारा नष्ट किया हुआ है। इस प्रकार यह राज्यादि सब विनश्वर हैं। फिर भी, मोह के उदय से जिसकी चेतना नष्ट हो गयी है ऐसा भरत इन्हें नित्य मानता है यह कितने दुःख की बात है?

चिन्तन की इसी प्रक्रिया में उन्होंने राज्य के त्याग का निर्णय ले लिया। अपने निर्णय से सम्राट् भरत को अवगत कराते हुए उन्होंने कहा—

देव मज्झु खमभाउ करेज्जसु । जं पडिकूलिउ तं म रूसेज्जसु ।

अप्पउ लच्छिविलासे रंजहि । लइ महि तुहुं जि णराहिव भुंजहि ।

णहणिवडियणीलुप्पलविट्ठिहि । हउं पुणु सरणु जामि परमेट्ठिहि । (महापुराण, सन्धि १८/२)

अर्थात् हे देव, मुझ पर क्षमाभाव कीजिए और जो मैंने प्रतिकूल आचरण किया है उस पर क्रुद्ध मत होइए। अपने को लक्ष्मीविलास से रंजित कीजिए। यह धरती आप ही लें, और इसका भोग करें। मैं, जिन पर आकाश से नीलकमलों की वृष्टि हुई है, ऐसे परमेष्ठी आदिनाथ की शरण में जाता हूँ।”

अनुज के मुखारविन्द से निकली हुई वाणी से भरत के सन्तप्त मन को शान्ति मिली। बाहुबली के विनम्र एवं शालीन व्यवहार को देखकर सम्राट् भरत विस्मयमुग्ध हो गये और उनके उदात्त चरित्र का गुणगान करते हुए कहने लगे—

पइं जिह तेयवंतु ण दिवायरु । णउ गंभीरु होइ रयणायरु ।  
 पइं दुज्जसकलंकु पक्खालिउ । णाहिणरिदवंसु उज्जालिउ ।  
 पुरिसरयणु तुहुं जगि एकल्लउ । जेण कयउ महु बलु वेयल्लउ ।  
 को समत्थु उवसमु पडिवज्जइ । जगि जसढक्क कामु किर वज्जइ ।  
 पइं मुएवि तिहुयणि को चंगउ । अण्णु कवणु पच्चक्खु अणंगउ ।  
 अण्णु कवणु जिणपयकयपेसणु । अण्णु कवणु रक्खियणिवसासणु । (महापुराण, सन्धि १८/३)

तुम जितने तेजस्वी हो, उतना दिवाकर भी तेजस्वी नहीं है। तुम्हारे समान समुद्र भी गम्भीर नहीं है। तुमने अपयश के कलंक को धो लिया है और नाभिराज के कुल को उज्ज्वल कर लिया है। तुम विश्व में अकेले पुरुषरत्न हो जिसने मेरे बल को भी विकल कर दिया। कौन समर्थ व्यक्ति शान्ति को स्वीकार करता है। विश्व में किसके यश का डंका बजता है। तुम्हें छोड़कर त्रिभुवन में कौन भला है? दूसरा कौन प्रत्यक्ष कामदेव है। दूसरा कौन जिनपदों की सेवा करनेवाला है और दूसरा कौन नृपशासन की रक्षा करनेवाला है।

दीक्षार्थी बाहुबली ने सांसारिक सुखों का त्याग करते हुए अपने पुत्र को राज्य भार देकर तपस्या के लिए वन में प्रवेश किया। उन्होंने समस्त भोगों को त्याग कर वस्त्राभूषण उतारकर फेंक दिए और एक वर्ष तक मेरु पर्वत के समान निष्कम्प खड़े रहकर प्रतिमा योग धारण कर लिया।

दीक्षा रूपी लता से आर्लिगित बाहुबली भगवान् निवृत्तिप्रधान साधुओं के लिए शताब्दियों से प्रेरणा-पुंज रहे हैं। महाकवि स्वयंभू ने 'पउमचरिउ' में भगवान् बाहुबली की तपश्चर्या का संक्षिप्त किन्तु प्रभावशाली चित्रांकन इस प्रकार किया है—

वडिठउ सुट्ठु विसालेहि वेल्ली-जालेहि अहि-विच्छिय-वस्मीयहि ।  
 खणु वि ण मुक्कु भडारउ मयण-वियारउ णं संसारहों भीर्यहि । (पउमचरिउ, संधि ४/१२)

अर्थात् पर्वत की तरह अचल और शान्त चित्त होकर खड़े रहे। बड़ी-बड़ी लताओं के जालों, सांप-बिच्छुओं और बाँवियों से वे अच्छी तरह घिर गये, कामनाशक भट्टारक बाहुबलि एक क्षण भी उनसे मुक्त नहीं हुए। मानो संसार की भीतियों ही ने उन्हें न छोड़ा हो!

महाकवि पुष्पदन्त ने भगवान् बाहुबली की अकाम-साधना को विश्व की सर्वोपरि उपलब्धि मानते हुए चक्रवर्ती भरत के मुखारविन्द से कहलवाया है—

“थुणइ णराहिउ पयपडियल्लउ पइं मुएवि जगि को विण भल्लउ ।  
 पइं कामे अकामु पारद्धउ पइं राए अराउ कउ णिद्धउ ।  
 पइं बाले अबालगइ जोइय पइं अपरेण वि परि मइ ढोइय ।  
 पइं जेहा जगगुरुणा जेहा एककु दोण्णि जइ तिहुयणि तेहा ।” (महापुराण, ८।६)

अर्थात् आपको छोड़कर जग में दूसरा अच्छा नहीं है, आपने कामदेव होकर भी अकामसाधना आरम्भ की है। स्वयं राजा होकर भी अराग (विराग) से स्नेह किया है, बालक होते हुए भी आपने पण्डितों की गति को देख लिया है। आप और विश्वगुरु ऋषभनाथ जैसे मनुष्य इस दुनिया में एक या दो होते हैं।

भगवान् बाहुबली की कठोर एवं निस्पृह साधना ने जिनागम के सूर्य आचार्य जिन्दसेन के मानस पटल को भावान्दोलित कर दिया था। इसीलिए उन्होंने अपने जीवन की सांध्य बेला में तपोरत भगवान् बाहुबली की शताधिक पद्यों द्वारा भक्तिपूर्वक अर्चा की है। 'आदिपुराण' के पर्व ३६।१०४ में योगीराज बाहुबली के तपस्वी परिवेश को देखकर उनके भक्तिपरायण मन में पत्तों के गिर जाने से कृश लतायुक्त वृक्ष का चित्र उपस्थित हो गया। साधना काल में भयंकर नागों और वनलताओं से वेष्टित महामुनि बाहुबली के आत्मवैभव का उन्होंने आदिपुराण पर्व ३६।१०६-११३ में इस प्रकार दिग्दर्शन कराया है—

दक्षानः स्कन्ध पर्यन्तलम्बिनीः केशवल्लरीः । सोऽन्वगाद्दृढकृष्णाहिमण्डलं हरिचन्दनम् ॥  
 माधवीलतया गाढमुपगूढः प्रफुल्लया । शाखाबाहुभिरावेष्ट्य सध्रीच्येव सहासया ॥  
 विद्याधरी करालून पल्लवा सा किलाशुपत् । पादयोः कामिनीवास्य सामि नम्राऽनुनेष्यती ॥

रेजे स तदवस्थोऽपि तपो दुश्चरमाचरन् । कामीव मुक्तिकामिन्यां स्पृहयालुः कृशीभवन् ॥  
तपस्तनूनपात्ताप संतप्तस्यास्य केवलम् । शरीरमशुषन्नोर्ध्वशोषं कर्माप्यशर्मदम् ॥

अर्थात् कन्धों पर्यन्त लटकती हुई केशरूपी लताओं को धारण करने वाले वे बाहुबली मुनिराज अनेक काले सर्पों के समूह को धारण करने वाले हरिचन्दन वृक्ष का अनुकरण कर रहे थे । फूली हुई वासन्तीलता अपनी शाखारूपी भुजाओं के द्वारा उनका गाढ़ आलिंगन कर रही थी और उससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो हार लिये हुए कोई सखी ही अपनी भुजाओं से उनका आलिंगन कर रही हो । जिसके कोमल पत्ते विद्याधरों ने अपने हाथ से तोड़ लिये हैं ऐसी वह वासन्ती लता उनके चरणों पर पड़कर सूख गयी थी और ऐसी मालूम होती थी मानो कुछ नम्र होकर अनुनय करती हुई कोई स्त्री ही पैरों पर पड़ी हो । ऐसी अवस्था होने पर भी वे कठिन तपश्चरण करते थे जिससे उनका शरीर कृश हो गया था और उससे ऐसे जान पड़ते थे मानो मुक्तिरूपी स्त्री की इच्छा करता हुआ कोई कामी ही हो । तपरूपी अग्नि के सन्ताप से सन्तप्त हुए बाहुबली का केवल शरीर ही खड़े-खड़े नहीं सूख गया था किन्तु दुःख देनेवाले कर्म भी सूख गये थे अर्थात् नष्ट हो गये थे ।

उग्र और महाउग्र तप से भगवान् गोम्मटेश अत्यन्त कृश हो गए थे । उन्होंने दीप्त, तप्तघोर, महाघोर नाम के तपश्चरण किए थे । इन तपों से मुनिराज बाहुबली ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे मेघों के आवरण से निकला हुआ सूर्य अपनी किरणों से जगत् को प्रकाशवान कर देता है । उनकी तपश्चर्या के प्रभाव से परस्पर विरोध भाव रखने वाले जंगल के प्राणियों में भी सद्भाव बन गया था । आचार्य जिनसेन के शब्दों में—

विरोधिनोऽप्यमी मुक्तविरोध स्वैरमासिताः । तस्योपांघीभसिहाद्याः शशंसुर्वैभवं मुनेः ।  
जरज्जम्बूकमाघ्राय मस्तके व्याघ्रधेनुका । स्वशावनिर्विशेषं तामपीप्यत् स्तन्यमात्मनः ॥  
करिणो हरिणारातीनन्वीयुः सह यूथपैः । स्तनपानोत्सुका भेजुः करिणीः सिंहपोतकाः ॥  
कलमान् कलभांकारमुखरान् नखरैः खरैः । कण्ठीरवः स्पृशन् कण्ठे नाभ्यनन्दि न यूथपैः ॥

(आदिपुराण, पर्व ३६/१६५-१६८)

अर्थात् उनके चरणों के समीप हाथी, सिंह आदि विरोधी जीव भी परस्पर का बैर-भाव छोड़कर इच्छानुसार उठते-बैठते थे और इस प्रकार वे मुनिराज के ऐश्वर्य को सूचित करते थे । हाल की ब्यायी हुई सिंहनी जैसे के बच्चे का मस्तक सूँघकर उसे अपने बच्चे के समान अपना दूध पिला रही थी । हाथी अपने झुण्ड के मुखियों के साथ-साथ सिंहों के पीछे-पीछे जा रहे थे और स्तन के पीने में उत्सुक हुए सिंह के बच्चे हथिनियों के समीप पहुँच रहे थे । बालकपन के कारण मधुर-शब्द करते हुए हाथियों के बच्चों को सिंह अपने पौने नाखूनों से उनकी गरदन पर स्पर्श कर रहा था और ऐसा करते हुए उस सिंह को हाथियों के सरदार बहुत ही अच्छा समझ रहे थे—उसका अभिनन्दन कर रहे थे ।

भगवान् बाहुबली के लोकोत्तर तप के पुण्य स्वरूप तिर्यक जीवों के हृदय में व्याप्त अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया था । जंगल के श्रूय जीव शान्ति मुद्रा का अमृतपान कर अहिंसक हो गए थे । भगवान् गोम्मटेश के चरणों के समीप के छिद्रों में से काले फण वाले नागराजों की लपलपाती हुई जिह्वाओं को देखकर प्रातःस्मरणीय आचार्य जिनसेन को भगवान् की पूजा के निमित्त नील कमलों से परिपूरित पूजा की थाली की सहसा स्मृति हो आई—

उपाङ्घि भोगिनां भोगैविनीलैर्व्यरुचन्मुनिः । विन्यस्तैरर्चनायेव नीलैस्तपलदामकैः ।

(आदिपुराण, पर्व ३६/१७१)

दिव्य तपोमूर्ति गोम्मटेश स्वामी की सतत साधना जन-जन की आस्था का केन्द्र रही है । भगवान् बाहुबली के तपोरत रूप से अभिभूत कन्नड कवि गोविन्द पै भाव-विह्वल अवस्था में प्रश्न कर बैठते हैं—‘तुम धूप में मुरझाते नहीं, ठण्ड में ठिठुरते नहीं, वर्षा से टपकते नहीं, तुम्हारे विवाह में दिशारूपी सुहागिनों ने तुम्हारे ऊपर नक्षत्र-अक्षत बरसाए, चन्द्र और सूर्य का सेहरा तुम्हारे सिर पर रखा, मेघ-दुन्दुभि के साथ बिजली से तुम्हारी आरती उतारी, नित्यता-वधू आतुरता से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है ! आँखें खोलकर देखते क्यों नहीं ? हे गोम्मटेश्वर !’

(२० श्री० मुगलि, कन्नड साहित्य का इतिहास, पृ० २२६)

चक्रवर्ती सम्राट् भरत ने तपोमूर्ति बाहुबली स्वामी द्वारा एक वर्ष की अवधि के लिए धारण किए गए प्रतिमायोग व्रत की समापन वेला के अवसर पर महामुनि बाहुबली के यशस्वी चरणों की पूजा की । पूजा के समय श्री गोम्मटस्वामी को केवलज्ञान हो गया । यह प्रसन्न चित्त सम्राट् भरत का कितना बड़ा अहोभाग्य था ! उन्हें बाहुबली स्वामी के केवलज्ञान उत्पन्न होने के पहले और पीछे—दोनों ही समय मुनिराज बाहुबली की विशेष पूजा का अवसर प्राप्त हुआ । सम्राट् भरत ने केवलज्ञान उत्पन्न होने से पहले जो पूजा की थी वह अपना अपराध नष्ट करने के लिए की थी और केवलज्ञान होने के बाद जो विशेष पूजा की वह केवलज्ञान की उत्पत्ति के अनुभव के लिए की थी । आचार्य जिनसेन के अनुसार सम्राट् भरत द्वारा केवलज्ञानी बाहुबली की भक्तिपूर्वक की गई अर्चना का शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता ।



सम्राट् भरत और बाहुबली के अटूट प्रेम संबंध का विवरण देते हुए उन्होंने लिखा है—

स्वजन्मानुगमोऽस्त्येको धर्मरागस्तथाऽपरः। जन्मान्तरानुबन्धश्च प्रेमबन्धोऽतिनिर्भरः॥  
इत्येकशोऽप्यमी भक्तिप्रकर्षस्य प्रयोजकाः। तेषां नु सर्वसामग्री कां न पुष्पाति सत्क्रियाम्।

(आदिपुराण, पर्व ३६।१६०-६१)

अर्थात् प्रथम तो बाहुबली भरत के छोटे भाई थे, दूसरे भरत को धर्म का प्रेम बहुत था, तीसरे उन दोनों का अन्य अनेक जन्मों से संबंध था, और चौथे उन दोनों में बड़ा भारी प्रेम था। इस प्रकार इन चारों में से एक-एक भी भक्ति की अधिकता को बढ़ाने वाले हैं, यदि यह सब सामग्री एक साथ मिल जाये तो वह कौन-सी उत्तम क्रिया को पुष्ट नहीं कर सकती अर्थात् उससे कौन-सा अच्छा कार्य नहीं हो सकता ?

समस्त पृथ्वी पर धर्म साम्राज्य की स्थापना करने वाले चक्रवर्ती सम्राट् भरत को इस सनातन राष्ट्र की सांस्कृतिक सम्पदा - आत्म-वैभव से श्रीमंडित सिद्ध पुरुष के रूप में जाना जाता है। इसीलिए उन्हें 'राजयोगी' के रूप में भी स्मरण किया गया है। धर्मप्राण भरत ने जिनेन्द्र बाहुबली के ज्ञान कल्याणक की भक्तिपूर्वक रत्नमयी पूजा की थी। उन्होंने रत्नों का अर्घ बनाया, गंगा के जल की जलधारा दी, रत्नों की ज्योति के दीपक चढ़ाये, मोतियों से अक्षत की पूजा की, अमृत के पिण्ड से नैवेद्य अर्पित किया, कल्पवृक्ष के टुकड़ों (चूर्णों) से धूप की पूजा की, पारिजात आदि देववृक्षों के फूलों के समूह से पुष्पों की अर्चा की, और फलों के स्थान पर रत्नों सहित समस्त निधियां चढ़ा दी। इस प्रकार उन्होंने रत्नमयी पूजा की थी।

सम्राट् भरत की भक्तिपरक रत्नमयी पूजा के उपरान्त स्वर्ग के देवों ने भगवान् गोम्मटदेव की विशेष पूजा की। केवलज्ञानलब्धि के समय अनेक अतिशय प्रकट हुए, जैसे—सुगन्धित वायु का संचरण, देवदुन्दुभि, पुष्पवृष्टि, छत्रत्रय, चंद्रों का डुलना, गन्ध कुटी आदि का स्वयमेव प्रकट हो जाना।

आचार्य जिनसेन के अनुसार भगवान् बाहुबली के नाम के अक्षर स्मरण में आते ही प्राणियों का समूह पवित्र हो जाता है। उनके चरणों के प्रताप से सर्पों के मुंह के उच्छ्वास से निकलती हुई विष की अग्नि शान्त हो जाती है।

तपोनिधि भगवान् गोम्मटेश की विराट् प्रतिमा की संस्थापना की सहस्राब्दी के उपलक्ष्य में १६८१ के महामस्तकाभिषेक के अवसर पर भारतीय डाक व तार विभाग ने एक बहुरंगी डाक-टिकट प्रकाशित करके भगवान् गोम्मटेश की मुक्ति-साधना के प्रति राष्ट्र की श्रद्धा को अभिव्यक्त किया था। अपने इसी वैशिष्ट्य के कारण भगवान् गोम्मटेश शताब्दियों से जन-जन की भावनाओं के प्रतिनिधि रूप में सम्पूजित हैं। आचार्य पुष्पदन्त ने लगभग १००० वर्ष पूर्व सत्य ही कहा था कि भगवान् गोम्मटेश्वर के पवित्र जीवन की गाथा पर्वत की गुफाओं तक में गायी जाती है—मंदरकंदरतं गाइय जस !

जैन पुराण शास्त्रों में भगवान् बाहुबली के प्रकरण में कुछ विवादास्पद सन्दर्भों का उल्लेख मिलता है। आचार्य कुन्दकुन्द के 'भाव पाहुड' की गाथा सं० ४४ में बाहुबली का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—“हे धीर-वीर, देहादि के सम्बन्ध से रहित किन्तु मान-कषाय से क्लुषित बाहुबली स्वामी कितने काल तक आतापन योग में स्थित रहे?” श्वेताम्बर साहित्य में तपोरत भगवान् बाहुबली में शल्य भाव की विद्यमानता मानी गई है। श्वेताम्बर साहित्य के अनुसार बाहुबली दीक्षा लेकर ध्यानस्थ हो गए और यह निश्चय कर लिया कि कवलय प्राप्त किए बिना भगवान् ऋषभदेव के समवशरण में नहीं जाऊंगा। तीर्थंकर ऋषभदेव के समवशरण में जाने पर बाहुबली को अपने से पूर्व के दीक्षित छोटे भाइयों को नमन करना पड़ता। ऐसी स्थिति में उन्हें सर्वज्ञ होने के उपरान्त ही भगवान् के समवशरण में जाना श्रेयस्कर लगा होगा।

जैन पुराण शास्त्र में उपरोक्त धारणाओं के मूल स्रोत की प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। किन्तु आचार्य रविषेण कृत 'पद्मपुराण', महाकवि स्वयम्भू कृत 'पउमचरिउ', आचार्य जिनसेन कृत 'हरिवंशपुराण', आचार्य जिनसेन कृत 'आदिपुराण' और महाकवि पुष्पदन्त कृत 'महापुराण' का पारायण करने से तपोरत भगवान् बाहुबली में शल्यभाव की विद्यमानता स्वयमेव निरस्त हो जाती है—

ततो भ्रात्रा समं वैरमवबुध्य महामनाः। संप्राप्तो भोगवैराग्यं परमं भुजविक्रमी॥

संत्यज्य स ततो भोगान् भूत्वा निर्वस्त्रभूषणः। वर्षं प्रतिमया तस्थौ मेरुवन्तिःप्रकम्पकः॥

वल्मीकविवरोद्यातैरत्युग्रैः स महोरगैः। श्यामादीनां च वल्लीभिः वेष्टितः प्राप केवलम्॥

(पद्मपुराण पर्व ४ / ७४-७६)

आचार्य रविषेण के अनुसार उदारचेता बाहुबली भाई के साथ वैर का कारण जानकर भोगों से विरक्त हो गए और एक वर्ष के लिए मेरु पर्वत के समान निष्प्रकम्प खड़े रहकर प्रतिमा योग धारण कर लिया। उनके पास अनेक वामियां लग गईं जिनके बिलों से निकले

हुए विशाल सर्पों और लताओं ने उन्हें वेष्टित कर लिया और अन्ततः इसी दशा में उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया ।

महाकवि स्वयंभू कृत 'पउमचरिउ' (संघि ४/१२) में बाहुबली स्वेच्छा से तपोवन में जाते हैं—

कि आएं साहमि परम-मोक्खु । जहि लब्भइ अचलु अणन्तु सोवखु ॥  
मुणिसल्लु करेवि जिणु गुरु भणेवि । थिउ पञ्च मुट्टिसिरे लोउ देवि ॥  
ओलम्भिय-करयलु एक्कु वरिसु । अविओलु अचलु गिरि-मेरु सरिसु ॥

अर्थात् इस पृथ्वी से क्या ? मैं मोक्ष की समाराधना करूंगा, जिससे अचल, अनन्त और शाश्वत सुख मिलता है । बाहुबली ने निःशल्य होकर जिनगुरु का ध्यान किया और पंचमुष्टियों से केशलोचन किया । बाहुबली दोनों हाथ लम्बे कर एक वर्ष तक मेरुपर्वत की तरह अचल और शान्त चित्त होकर खड़े रहे । महाकवि स्वयंभू ने संघि ४/१३ में तपोरत बाहुबली में थोड़ी-सी कषाय अर्थात् भरतभूमि पर खड़े रहने का परिज्ञान, का उल्लेख किया है, शल्य का नहीं । आचार्य जिनसेन कृत 'हरिवंशपुराण' (सर्ग ११/६८) में बाहुबली के एक वर्ष के प्रतिमायोग का उल्लेख मिलता है । इसी पद्य में बाहुबली के कैलाश पर्वत पर तपस्या करने का उल्लेख भी आया है । जैन पुराणों में हरिवंश पुराण ही एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है जिसमें भरत एवं बाहुबली के युद्ध की निश्चित संग्राम भूमि अर्थात् वितता नदी के पश्चिम भाग का उल्लेख मिलता है । सम्भवतया हरिवंशपुराणकार ने ऐसा लिखते समय किसी प्राचीन कृति का आधार लिया होगा । बाहुबली के कैलाश पर्वत पर तपस्या करने के उल्लेख से यह सिद्ध हो जाता है कि तपोरत बाहुबली में शल्य-भाव की विद्यमानता परवर्ती लेखकों की कल्पना मात्र है । महाकवि पुष्पदन्त ने 'महापुराण' (१८/५/८) में बाहुबली के कैलाश पर्वत पर तपस्या करने का उल्लेख इस प्रकार किया है—'गए केलासु परायउ भयुबलि ।' उन्होंने बाहुबली के चरित्र की विशेषता में 'खाविउं खम भूसणु गुणावंतहं' और 'पइं जित्ति खमा वि खम भावें' जैसी काव्यात्मक सूक्तियां लिखकर उन्हें गुणवानों में सर्वश्रेष्ठ एवं क्षमाभूषण के रूप में समादृत किया है । आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण (पर्व ३६/१३७) में सत्य ही कहा है कि तपोरत बाहुबली स्वामी रसगौरव, शब्दगौरव और ऋद्धिगौरव से युक्त थे, अत्यन्त निःशल्य थे और दश धर्मों के द्वारा उन्हें मोक्षमार्ग में दृढ़ता प्राप्त हो गई थी । इस प्रकार उपरोक्त पांचों जैन पुराणों के तुलनात्मक विवेचन से यह सिद्ध होता है कि तपोरत बाहुबली में शल्य भाव नहीं था ।

भगवान् बाहुबली का कथानक जैन समाज में अत्यधिक लोकप्रिय रहा है । जैन धर्म की पौराणिक रचनाओं में बाहुबली स्वामी का प्रकरण बहुलता से मिलता है । प्रारम्भिक रचनाओं में यह कथानक संक्षेप में दिया गया है और परवर्ती रचनाओं में इसका क्रमशः विस्तार होता गया । भगवान् बाहुबली को धीर-वीर उदात्त नायक मानकर अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना हुई है । आधुनिक कन्नड भाषा के अग्रणी साहित्यकार श्री जी० पी० राजरत्नम् ने गोम्मट-साहित्य की विशेष रूप से ग्रन्थ-सूची तैयार की है, जिसमें कतिपय ऐसे ग्रन्थों का उल्लेख है, जिनकी जानकारी अभी भी अपेक्षित है । संस्कृत एवं प्राकृत भाषा में निबद्ध 'अनन्त वे मधुर' और 'चारुचन्द्रमा' से प्रायः अधिकांश विद्वान् अपरिचित हैं । पौराणिक मान्यताओं में भगवान् बाहुबली के स्वरूप के विशद विवेचन के लिए बाहुबली साहित्य का मन्थन अत्यावश्यक है । उदाहरण के लिए आचार्य रविषेण (ई० ६४३-६८०) ने 'पद्मपुराण' (पर्व ४/७७) में भगवान् बाहुबली को इस अवसर्पिणी काल का सर्वप्रथम मोक्षगामी बतलाया है—

ततः शिवपदं प्रापदायुषः कर्मणः क्षये । प्रथमं सोऽवसर्पिण्यां मुक्तिमार्गं व्यशोधयत् ॥

इसके विपरीत भगवान् बाहुबली के कथानक को जनमानस में प्रतिष्ठित कराने में अग्रणी आचार्य जिनसेन ने भगवान् ऋषभदेव के पुत्र सर्वज्ञ अनन्तवीर्य को इस अवसर्पिणी युग में मोक्ष प्राप्त करने के लिए सब में अग्रगामी (सर्वप्रथम मोक्षगामी) बतलाया है—“सबुद्धोऽनन्त-वीर्यश्च सर्वेऽपि तापसास्तपसि स्थिताः । भट्टारकान्ते संबुद्धय महा प्रात्राज्यमास्थिताः ।” (आदिपुराण, पर्व २४/१८१)

जैन पुराण शास्त्र में इस प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए गम्भीर अध्ययन अपेक्षित है । भगवान् बाहुबली को इस अवसर्पिणी युग का सर्वप्रथम मोक्षगामी स्वीकार करने के कुछ कारण यह हो सकते हैं कि बाहुबली का कथानक आदि युग से जन-जन की जिज्ञासा एवं मनन का विषय रहा है । जैन पुराणों में प्रायः परम्परा रूप में भगवान् ऋषभदेव की वन्दना की परिपाटी चली आ रही है । इस पद्धति का अनुकरण करते हुए प्रायः सभी पुराणकारों एवं कवियों ने तीर्थंकर ऋषभदेव की वन्दना के साथ भरत एवं बाहुबली प्रकरण का उल्लेख किया है । भगवान् बाहुबली की तपश्चर्या, केवलज्ञान लब्धि और मोक्ष का प्रायः सभी पुराणों में बहुलता से उल्लेख मिलता है । बाहुबली प्रथम कामदेव थे और उन्होंने चक्रवर्ती भरत से पहले मोक्ष प्राप्त किया था । इसी कारण उन्हें सर्वप्रथम मोक्षगामी भी कहा जाता है ।

चक्रवर्ती सम्राट् भरत द्वारा पोदनपुर स्थित भगवान् बाहुबली की ५२५ धनुष ऊंची स्वर्ण निर्मित प्रतिमा का आख्यान श्रवणबेलगोल स्थित भगवान् गोम्मटेश की ऐतिहासिक मूर्ति के निर्माण का मुख्याधार है। इस लुप्तप्राय तीर्थ का गोम्मटदेव से विशेष सम्बन्ध रहा है। अजेय सेनापति चामुण्डराय द्वारा श्रवणबेलगोल में भगवान् बाहुबली की प्रतिमा के निर्माण से पूर्व के जैन साहित्य में पोदनपुर की सुख-समृद्धि का उल्लेख बहुलता से मिलता है। इस महान् तीर्थ के माहात्म्य को देखते हुए पूज्यपाद देवनन्दि (लगभग ५०० ई०)ने निर्वाणभक्ति (तीर्थवन्दना संग्रह, पृ० २६) में इस तीर्थ की गणना सिद्ध क्षेत्र में की है। यदि निर्वाण भक्ति का यह अंश प्रक्षिप्त नहीं है तो पोदनपुर की गणना निश्चय ही प्राचीन तीर्थक्षेत्रों में की जा सकती है।

एक जनश्रुति के अनुसार चक्रवर्ती सम्राट् भरत ने अपने अनुज बाहुबली की तपश्चर्या एवं मोक्षसाधना के उपलक्ष्य में भगवान् गोम्मटेश की राजधानी पोदनपुर में बाहुबली के आकार की ५२५ धनुष ऊंची स्वर्ण प्रतिमा बनवाई थी। कालान्तर में प्रतिमा के निकटवर्ती क्षेत्र में कुक्कुट सर्पों का वास हो गया और मूर्ति का नाम कुक्कुटेश्वर पड़ गया। कालान्तर में मूर्ति लुप्त हो गई और उसके दर्शन केवल दीक्षित व्यक्तियों के लिए मन्त्र शक्ति से प्राप्य रह गये। जैनाचार्य जिनसेन (आदिपुराण के रचयिता से भिन्न लोककथाओं में उल्लिखित अन्य) के मुखारविन्द से भगवान् बाहुबली की मूर्ति का वर्णन सुनकर सेनापति चामुण्डराय की माता काललदेवी ने मूर्ति के दर्शन की प्रतिज्ञा की। अपनी धर्मपरायणा पत्नी अजितादेवी से माता की प्रतिज्ञा के समाचार को जानकर चामुण्डराय परिवार जनों के साथ भगवान् गोम्मटेश की मूर्ति के दर्शनार्थ चल दिए। मार्ग में उन्होंने श्रवणबेलगोल के दर्शन किए। रात्रि के समय उन्हें पद्मावती देवी ने स्वप्न में कहा कि कुक्कुट सर्पों के कारण पोदनपुर के भगवान् गोम्मटेश के दर्शन सम्भव नहीं हैं किन्तु तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् गोम्मटेश तुम्हें इन्द्रगिरि की पहाड़ी पर दर्शन देंगे। चामुण्डराय की माता काललदेवी को भी ऐसा ही स्वप्न आया। सेनापति चामुण्डराय ने स्नान-पूजन से शुद्ध होकर चन्द्रगिरि की एक शिला से दक्षिण दिशा की तरफ मुख करके एक स्वर्ण-बाण छोड़ा जो बड़ी पहाड़ी (इन्द्रगिरि) के मस्तक की शिला में जाकर लगा। बाण के लगते ही भगवान् गोम्मटेश्वर का मुख मंडल प्रकट हो गया। तदुपरान्त सेनापति चामुण्डराय ने कुशल शिल्पियों के सहयोग से अगणित राशि व्यय करके भगवान् गोम्मटेश की विश्वविख्यात प्रतिमा का निर्माण कराया। मूर्ति के बन जाने पर भगवान् के अभिषेक का विशेष आयोजन किया गया। अभिषेक के समय एक आश्चर्य यह हुआ कि सेनापति चामुण्डराय द्वारा एकत्रित विशाल दुग्ध राशि के रिक्त हो जाने पर भी भगवान् गोम्मटेश की मूर्ति की जंघा से नीचे के भाग पर दुग्ध गंगा नहीं उतर पाई। अभिषेक अपूर्ण रह गया। ऐसी स्थिति में चामुण्डराय ने अपने गुरु अजितसेन से मार्गदर्शन की प्रार्थना की। आचार्य अजितसेन ने एक साधारण वृद्धा नारी गुल्लिकायाज्जि को भक्तिपूर्वक 'गुल्लिकायि' (फल का कटोरा) में लाए गए दूध से भगवान् का अभिषेक करने की अनुमति दे दी। महान् गुल्लिकायाज्जि द्वारा फल के कटोरे में अल्पमात्रा में लाए गए दूध की धार से प्रतिमा का सर्वांग अभिषेक सम्पन्न हो गया और सेनापति चामुण्डराय का मूर्ति-निर्माण का दर्प भी दूर हो गया।

भगवान् गोम्मटेश की सातिशययुक्त प्रतिमा के निर्माण सम्बन्धी लोक साहित्य में ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश हो गया है। भक्तिपरक साहित्य अथवा दन्तकथाओं से इतिहास को पृथक् कर पाना सम्भव नहीं होता। उदाहरण के लिए इन्द्रगिरि पर सेनापति चामुण्डराय द्वारा भगवान् गोम्मटेश के विग्रह की स्थापना के उपरान्त भी श्री मदनकीर्ति (१२वीं शताब्दी) ने पोदनपुर स्थित भगवान् गोम्मटेश की प्रतिमा के अतिशय का चमत्कारपूर्ण वर्णन इस प्रकार किया है—

पादांगुष्ठनखप्रभासु भविनामाभान्ति पश्चाद् भवाः ।

यस्यात्मीयभवा जिनस्य पुरतः स्वस्थोपवासप्रमाः ॥

अद्यापि प्रतिभाति पोदनपुरे यो वन्द्यवन्द्यः स वै ।

देवो बाहुबली करोतु बलवद् दिग्वाससां शासनम् ॥ (मदनकीर्ति, तीर्थ वन्दन संग्रह, पृ० ३)

कवि के अनुसार पोदनपुर के भगवान् बाहुबली के चरणनखों में भक्तों को अपने पूर्व भवों के दर्शन होते हैं। इस सम्बन्ध में कवि की रोचक कल्पना यह है कि दर्शकों को उसके व्रतों की संख्या के अनुसार ही पूर्व भवों का ज्ञान हो पाता है।

मेरी निजी धारणा है कि इन्द्रगिरि स्थित भगवान् बाहुबली की कलात्मक प्रतिमा का निर्माण अनायास ही नहीं हो गया। इस प्रकार के भव्य निर्माण में शताब्दियों की साधना एवं विचार मंथन का योग होता है। दक्षिण भारत में राष्ट्रकूट शासन के अन्तर्गत महान् धर्मगुरु आचार्यप्रवर वीरसेन, जिनसेन और गुणभद्र ने श्रुत साहित्य एवं जैन धर्म की अपूर्व सेवा की है। इन महान् आचार्यों की सतत साधना एवं अध्यवसाय से जैन सिद्धान्त ग्रन्थ एवं पौराणिक साहित्य का राष्ट्रव्यापी प्रचार-प्रसार हुआ। परमप्रतापी राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष (प्रथम) की आचार्य वीरसेन एवं जिनसेन में अनन्य भक्ति थी। आचार्य जिनसेन स्वामी ने जीवन के उत्तरार्द्ध में आदिपुराण की रचना की। आदिपुराण

के ४२ पर्व पूर्ण होने पर उनका समाधिमरण हो गया। समाधिमरण से पूर्व ही उन्होंने भगवान् बाहुबली से सम्बन्धित पर्व ३४, ३५ और ३६ का प्रणयन कर लिया था। भगवान् बाहुबली के चरणों में अपनी आस्था का अर्घ्य समर्पित करते हुए उन्होंने (पर्व ३६/२१२) में भगवान् गोम्मटेश्वर की वन्दना करते हुए कहा था कि योगिराज बाहुबली को जो पुरुष हृदय में स्मरण करता है उसकी अन्तरात्मा शान्त हो जाती है और वह निकट भविष्य में जिनेन्द्र भगवान् की अपराजेय विजयलक्ष्मी (मोक्षमार्ग) को प्राप्त कर लेता है—

जगति जयिनमेतं योगिनं योगिवर्यै-  
रधिगतमहिमानं मानितं माननीयैः ।  
स्मरति हृदि नितान्तं यः स शान्तान्तरात्मा  
भजति विजयलक्ष्मीमाशु जैनीमजय्याम् ॥

आचार्य जिनसेन अपने युग के परमप्रभावक धर्माचार्य थे। तत्कालीन दक्षिण भारत के राज्यवंशों एवं जनसाधारण में उनका विशेष प्रभाव था। शक्तिशाली राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष (प्रथम) ने सम्भवतया उन्हीं के प्रभाव से जीवन के अन्तिम भाग में दिगम्बरी दीक्षा ली थी। ऐसे महान् आचार्य एवं कवि के मानस पटल पर अंकित भगवान् बाहुबली की विशाल प्रतिमा को मूर्त रूप देने का विचार जैन धर्मावलम्बियों में निश्चित रूप से आया होगा। धर्मपरायण सम्राट् अमोघवर्ष (प्रथम) का अपने अधीनस्थ राजा बंकेय से विशेष स्नेह था। उदार सम्राट् ने राजा बंकेय द्वारा निर्मित जिनमन्दिर के लिए तलेमुर गांव का दान भी किया था। जैन धर्म परायण राजा बंकेय ने अपने पीरुष से बंकापुर नाम की राजधानी बनाई जो कालान्तर में जैन धर्म का एक प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र बन गयी। सम्राट् अमोघवर्ष (प्रथम) के पुत्र अकाल वर्ष और राजा बंकेय के पुत्र लोकादित्य में प्रगाढ़ मैत्री थी। सम्राट् अकालवर्ष के राज्यकाल में राजा लोकादित्य की साक्षी में उत्तरपुराण के पूर्ण हो जाने पर महापुराण की विशेष पूजा का आयोजन हुआ। उत्तरपुराण की पीठिका के आशीर्वचन में कहा गया है—महापुराण के चिन्तवन से शान्ति, समृद्धि, विजय, कल्याण आदि की प्राप्ति होती है। अतः भक्तजनों को इस ग्रन्थराज की व्याख्या, श्रवण, चिन्तवन पूजा, लेखन कार्य आदि की व्यवस्था में रुचि लेनी चाहिए। परवर्ती राष्ट्रकूट नरेशों एवं गंगवंशीय शासकों में विशेष स्नेह सम्बन्ध रहा है। राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र चतुर्थ का गंगवंशीय राजा मारसिंह ने अभिषेक किया था। राजा इन्द्र चतुर्थ ने जीवन के अन्तिम भाग में सल्लेखना द्वारा श्रवणबेलगोल में आत्मोत्सर्ग किया। गंगवंशीय राजा मारसिंह ने बंकापुर में आचार्य अजितसेन के निकट तीन दिन तक उपवास रखकर समाधिमरण किया था।

बंकापुर के सांस्कृतिक केन्द्र की गतिविधियों का नियमन आचार्य अजितसेन के यशस्वी मार्गदर्शन में होता था। उनके अगाध पांडित्य के प्रति दक्षिण भारत के राज्यवंशों में विशेष सम्मान भाव था। गंगवंशीय राजा मारसिंह, राजा राचमल्ल (चतुर्थ), सेनापति चामुण्डराय एवं महाकवि रन्न उनके प्रमुख शिष्य थे। आचार्य जिनसेन की प्रेरणा से स्थापित बंकापुर के सांस्कृतिक केन्द्र में महापुराण के महातपी बाहुबली भगवान् की तपोरत विराट् मूर्ति के निर्माण का विचार निरन्तर चल रहा था।

सेनापति चामुण्डराय ने अपने प्रतापी शासक राजा मारसिंह की समाधि के समय सम्भवतया भगवान् बाहुबली की विशाल प्रतिमा के निर्माण का स्वप्न लिया होगा। दक्षिण भारत के शिल्पियों को संगठित करने में जैन धर्म के यापनीय संघ की प्रभावशाली भूमिका रही है। इस महान् मूर्ति के निर्माण की संकल्पना में आदिपुराण को साकार करने के लिए समर्थ आचार्य अजितसेन और आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती का वरदहस्त सेनापति चामुण्डराय को उपलब्ध था। आचार्य जिनसेन की परिकल्पना से भगवान् गोम्मटेश्वर का प्रबल पाषाण पर मूर्त्यारूढ आरम्भ हो गया। आचार्यद्वय—अजितसेन एवं नेमिचन्द्र की कृपा से भगवान् गोम्मटेश की लोकोत्तर मूर्ति का निर्माण सम्भव हुआ और इस प्रकार अपराजेय सेनापति चामुण्डराय की धनलक्ष्मी भगवान् गोम्मटेश के चरणों में सार्थक हुई।

माता गुह्लिकायाज्जि को भगवान् गोम्मटेश्वर के मस्तकाभिषेक के अवसर पर असाधारण गौरव देने में भी सम्भवतया कुछ ऐतिहासिक कारण रहे हैं। दक्षिण भारत में यापनीय संघ के आचार्यों का अनेक राज्यवंशों एवं जनसाधारण पर अपने असाधारण कृतित्व का प्रभुत्व रहा है। कन्नड भाषा के प्रारम्भिक अभिलेखों में यापनीय संघ के साधुओं का अनेकशः उल्लेख मिलता है। इस सम्प्रदाय में अनेक प्रतिभाशाली आचार्य एवं कवि हुए हैं, जिन्होंने संस्कृत, प्राकृत, कन्नड आदि भाषा में शताधिक प्रतिष्ठित ग्रन्थों की रचना की है। यापनीय संघ के उदार आचार्य लोकजीवन के प्रति उन्मुख रहे हैं। परिवेश से दिग्म्बर रहते हुए भी वे नारी मुक्ति के पक्षधर थे। सम्भवतया इन्हीं आचार्यों के सांस्कृतिक प्रभाव से दक्षिण भारत में नारी जाति को पूजा-अनुष्ठान में विशेष गौरव प्राप्त हुआ। भगवान् गोम्मटेश के महामस्तकाभिषेक में गुह्लिकायाज्जि का अभिषेक जल समग्र नारी जाति के भक्ति भाव का प्रतीक है।

भगवान् गोम्मटेश्वर के विग्रह के यशस्वी निर्माता राजा चामुण्डराय अनेक युद्धों के विजेता थे। उन्होंने अपने स्वामी राजा मारसिंह एवं राजा राचमल्ल (चतुर्थ) के लिए अनेक युद्ध किए थे। उनके पराक्रम से शत्रु भयभीत हो जाते थे। त्यागब्रह्मदेव स्तम्भ पर उत्कीर्ण एक

आषाढ लेख (१०६/२८१) में उनके कुल एवं विजय अभियानों का ऐतिहासिक विवरण इस प्रकार मिलता है—

ब्रह्म-क्षत्र-कुलोदयाचल-शिरोभूषामणिर्वर्मानुमान् ।  
 ब्रह्म-क्षत्रकुलाब्धि-वर्द्धन-यशो-रोचिस्सुधा-दीधितिः ।  
 ब्रह्म-क्षत्र-कुलाकराचल-भव-श्री-हार वल्लीमणिः  
 ब्रह्म-क्षत्र-कुलाग्निचण्डपवनश्चावुण्डराजोऽजनि ।  
 कल्पान्त-क्षुभिताब्धि-भीषण-बलं पातालमल्लानुजम्  
 जेतुं वज्रिवलदेवमुद्यतभुजस्येन्द्र-क्षितीन्द्राज्ञया ।  
 पत्युश्श्री जगदेकवीर नृपतेर्जैत्र-द्विपस्याग्रतो  
 धावद्दन्तिनि यत्र भग्नमहितानीकं मृगानीकवत् ।  
 अस्मिन् दन्तिनि दन्त-वज्र-दलित-द्विट्-कुम्भ-कुम्भोपले  
 वीरोत्तंस-पुरोनिषादिनि रिपु-व्यालांकुशे च त्वयि ।  
 स्यात्कोनाम न गोचरप्रतिनृपो मद्बाण-कृष्णोरग-  
 ग्रासस्येति नोलम्बरराजसमरे यः श्लाघितः स्वामिना ।  
 खातःक्षार-पयोधिरस्तु परिधिश्चास्तु त्रिकूटर्पुरी  
 लंकास्तु प्रतिनायकोऽस्तु च सुरारातिस्तथापि क्षमे ।  
 तं जेतुं जगदेकवीर-नृपते त्वत्तेजसेतिक्षणान्-  
 निर्व्यूढं रणसिग-पात्थिव-रणे येनोज्जितं गज्जितम् ।  
 वीरस्यास्य रणेषु भूरिषु वय कण्ठग्रहोत्कण्ठया  
 तप्तास्सम्प्रति लब्ध-निर्वृतिरसास्त्वत्खड्ग-धाराम्भसा ।  
 कल्पान्तं रणरंगसिग-विजयी जीवेति नाकांगना  
 गोवर्षाणी-कृत-राज-गन्ध-करिणे यस्मै वितीर्णशिषः ।  
 आकृष्टं भुज-विक्रमादभिलषन् गंगाधिराज्य-श्रियं  
 येनादौ चलदंक-गंगनृपतिर्व्यर्थाभिलाषीकृतः ।  
 कृत्वा वीर-कपाल-रत्न-चषके वीर-द्विषश्शोणितम्  
 पातुं कौतुकिनश्च कोणप-गणाःपूर्णाभिलाषीकृताः ।

धर्मपरायण माननीय श्री हर्गडे जी (लगभग ई० १२००) ने इसी स्तम्भ पर यक्ष देवता की मूर्ति का निर्माण कराने के लिए इस दुर्लभ अभिलेख को तीन ओर से घिसवा दिया। किन्तु श्री हर्गडे जी के इस भक्तिपरक अनुष्ठान के कारण इस शिलालेख के महत्त्वपूर्ण अंश लुप्त हो गए हैं। परिणामस्वरूप जैन समाज महान् सेनानायक चामुण्डराय और गोम्मट विग्रह के निर्माण की प्रामाणिक जानकारी से वंचित रह गया है। चामुण्डराय के पुत्र आचार्य अजितसेन के शिष्य जिनदेवण ने लगभग १०४० ई० में श्रवणबेलगोल में एक जैन मन्दिर (अभिलेख ६७ (१२१)) बनवाकर अपने यशस्वी पिता की भांति भगवान् गोम्मटेश के चरणों में श्रद्धा अर्पित की थी। आचार्य अजितसेन की यशस्वी शिष्य परम्परा कनकनन्दि, नरेन्द्रसेन (प्रथम), त्रिविधचक्रेश्वर, नरेन्द्रसेन, जिनसेन और उभयभाषा चक्रवर्ती मल्लिषेण की श्रवणबेलगोल के विकास एवं संरक्षण में रुचि रही है।

श्रवणबेलगोल स्थित भगवान् गोम्मटस्वामी की नयनाभिराम प्रतिमा अपने निर्माणकाल से ही जन-जन की आस्था के प्रतीक रूप में सम्पूजित रही है। एक लोककथा के अनुसार स्वर्ग के इन्द्र एवं देवगण भी इस अद्वितीय प्रतिमा की भुवनमोहिनी छवि के दर्शन के निमित्त भक्ति भाव से पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं। भगवान् गोम्मटस्वामी के विग्रह के निर्माण में अग्रणी सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने कर्मकाण्ड की गाथा सं० ६६६ में भगवान् बाहुबली स्वामी की विशाल प्रतिमा के लोकोत्तर स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि उसे सर्वार्थसिद्धि के देवों ने और सर्वावधि-परमावधिज्ञान के धारी योगियों ने दूर से देखा।

इन्द्रगिरि पर स्थित भगवान् गोम्मटेश की तपोरत प्रतिमा के चरणों में अपनी भक्ति का अर्घ्य समर्पित करते हुए आचार्यश्री नेमिचन्द्र ने कहा है—

गोम्मटेश दिग्दर्शन

उपाहिमुत्तं धनधाम-वज्जियं,  
सुसम्मजुत्तं मय-मोहहारयं ।  
वस्सेय पज्जंतमुववास-जुत्तं,  
तं गोमटेसं पणमामि णिच्चं ॥ (गोम्मटेस-थुदि, पद सं० ८)

अर्थात् समस्त उपाधियों से मुक्त होकर, धनधाम आदि सम्पूर्ण परिग्रह को छोड़कर, मद-मोह आदि विकारों को निरस्त करके, सुखद समभाव से परिपूरित हो, जिन्होंने एक वर्ष का उपवास किया, उन भगवान् गोमटेश्वर का मैं नित्य नमन करूँ ।

दक्षिण भारत में कर्नाटक राज्य के उदार होयसल वंशी नरेशों के राज्यकाल में जैनधर्म का विशेष संरक्षण हुआ। होयसल नरेश राजा विनयादित्य का समय भारतीय इतिहास में 'जैन मन्दिरों के निर्माण का स्वर्णयुग' माना जाता है। श्रवणबेलगोल से प्राप्त एक अभिलेख [लेख सं० ५३ (१४३)] में कहा गया है कि उन्होंने कितने ही तालाब व कितने ही जैनमन्दिर निर्माण कराये थे। यहाँ तक कि ईंटों के लिए जो भूमि खोदी गई वहाँ तालाब बन गये, जिन पर्वतों से पत्थर निकाला गया वे पृथ्वी के समतल हो गये, जिन रास्तों से चूने की गाड़ियाँ निकलीं वे रास्ते गहरी घाटियाँ हो गये। इसी वंश के प्रतापी राजा विष्णुवर्धन (ई० ११०६ से ११४१) के राज्यकाल में होयसलेश्वर एवं शांतलेश्वर के विश्व प्रसिद्ध शिवालयों का निर्माण हुआ। उपरोक्त मन्दिरों के लिए विशाल नदी-मण्डप बनाए गए। सैकड़ों शिल्पियों के संयुक्त परिश्रम से कई मास में नन्दियों की मूर्ति बनकर तैयार हुईं। विशाल नन्दियों की मूर्ति को बलैगाड़ियों और वाहनों द्वारा देवालय तक ले जाना असम्भव था। नवनिर्मित नन्दी की प्रतिमाएँ मन्दिर तक कैसे पहुँचीं इसका रोचक विवरण श्री के० वी० अय्यर ने 'शान्तला' में एक स्वप्न-कथा के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

"देव, नन्दी-पत्थर के नन्दी चले आ रहे हैं! वे जीवित हैं! उनका शरीर सोने के समान चमक रहा है! वहाँ जो प्रकाश फैला है, वह नन्दियों के शरीर की कांति ही है। प्रभो, उनकी आँखें क्या हैं, जलते हुए अंगारे हैं! हम लोगों ने जो कुछ देखा, वही निवेदन कर रहे हैं। महा-प्रभो, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। यदि यह असत्य हो, तो हम अपने सिर देने के लिए तैयार हैं। कैसा आश्चर्य है! पत्थर के नन्दी चले आ रहे हैं! भगवान् बाहुबली स्वामी—विराट शिला-प्रतिमा—स्वयं नन्दियों को चलाते आ रहे हैं! अटारी पर खड़े होकर अपनी आँखों से हमने यह दृश्य देखा है! फौरन ही आपके पास आकर समाचार सुना दिया है! शिला-कृतियाँ जीवित हो उठी हैं—यह कैसा अद्भुत काल है! अप्पा जी (नरेश विष्णुवर्धन) ने कहा—'तुम लोग धन्य हो कि सबसे पहले ऐसे दृश्य को देखने का सौभाग्य प्राप्त किया! जाओ, सबको यह संतोष का समाचार सुनाओ कि जीवित नन्दी पैदल चले आ रहे हैं और भगवान् बाहुबली उन्हें चलाते आ रहे हैं।"

जब उपस्थित लोगों को यह मालूम हुआ, तब उनके आनन्द की सीमा न रही। उन्नत सौधाग्रों तथा वृक्षों के शिखरों पर चढ़कर लोग इस दृश्य को देखने लगे। लगभग तीन कोस की दूरी पर भगवान् बाहुबली—श्रवलबेलगोल के गोमटेश्वर स्वामी—नन्दियों को चलाते आ रहे थे। महोन्नत शिलामूर्ति जो कि बारह पुरुषों के आकार-सी बड़ी है—एक सजीव, सौम्य पुरुष के रूप में दिखाई दे रही थी। गोमटेश्वर के प्रत्येक कदम पर धरती काँपने लगती थी। उनके पद-तल में जितने लता-गुल्म पड़ते थे, चूर-चूर हो जाते थे। अहंकार की भाँति जमीन के ऊपर सिर उठाये हुए शिला खण्ड भगवान् बाहुबली के पदाघात से भूमि में धँस जाते थे। नन्दियों के बदन से सोने की-सी छवि छिटकती थी। उनके गले में बँधे हुए, पीठ पर लटकते हुए नाना प्रकार के छोटे-बड़े घंटे, कमर पर, बगल में, पैरों में लगे हुए घुँघरू मधुर निनाद कर रहे थे, जिनकी प्रतिध्वनि कानन में सर्वत्र गूँज रही थी। × × ×

वे नन्दी! दीदी, सुनहले रंग के नन्दी। मेरु पर्वत की भाँति उन्नत, पुष्ट, उत्तम आभरणों से सजे हुए नन्दियों को परम सौम्य एवं सुन्दर भगवान् बाहुबली का चलाते हुए आना ऐसा भव्य दृश्य था जिसकी महत्ता का परिचय उसे स्वयं देखने पर ही हो सकता है। शब्दों से उसका वर्णन करना सचमुच असंभव ही है। लोग परस्पर कहने लगे—'इससे बढ़कर पुण्य का दृश्य और कहाँ देखने को मिलेगा! इसे देखकर हमारी आँखें धन्य हुईं। मरते दम तक मन में इस दृश्य को रखकर जी सकते हैं।' × × ×

बाहुबली स्वामी नन्दियों को देवालय के महाद्वार तक चलाते आये। तब अप्पाजी, तुम, छोटी दीदी, मैं तथा उपस्थित सब लोगों ने आनन्द तथा भक्ति से हाथ जोड़कर बाहुबली तथा नन्दियों के चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया। महाद्वार के ऊपर से लोगों ने पुष्पों से महाबलि स्वामी का मस्तकाभिषेक किया।" (पृ० २३२, २३३, २४०)

प्रस्तुत अंश के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि भगवान् बाहुबली जैन एवं जैनेतर धर्मों के परमाराध्य पुरुष के रूप में शताब्दियों से वन्दनीय रहे हैं। शैव मन्दिर के निर्माण की परिकल्पना में भगवान् बाहुबली का भक्ति एवं श्रद्धा से स्मरण और उनका सुगन्धित पुष्पों से देवालय के महाद्वार पर पुष्पाभिषेक यह सिद्ध करता है कि भगवान् बाहुबली जैन समाज के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण कर्नाटक राज्य की

अर्चा के प्रमुख देवपुरुष रहे हैं। सम्राट् विष्णुवर्धन के प्रतापी सेनापति ने विषम परिस्थितियों में भी होयसल राज्य की कीर्ति-पताका के लिए कठोर श्रम किया था। शांतला के लेखक श्री के० वी० अय्यर के अनुसार—

“पत्तों की आड़ में छिपे हुए सुगन्धित पुष्प की भाँति गंगराज ने होयसल राज्य का निर्माण करके सिंहासन पर स्वयं न बैठकर राज्य की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए निरन्तर कष्ट उठाया और अपनी कीर्ति होयसल राज्य को दान करके निष्काम कर्मी कहलाकर वे परम पद को प्राप्त हुए।” इन्हीं महान् गंगराज ने गोम्मटेश्वर का परकोटा बनवाया, गंगवाडि परगने के समस्त जिन मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया, तथा अनेक स्थानों पर नवीन जिनमन्दिर निर्माण कराये। प्राचीन कुन्दकुन्दान्वय के वे उद्धारक थे। इन्हीं कारणों से वे चामुण्डराय से भी सौगुणे अधिक धन्य कहे गये हैं।

राजा विष्णुवर्धन के उत्तराधिकारी नरसिंह प्रथम (ई० ११४१ से ११७२) अपनी दिग्विजय के अवसर पर श्रवणबेलगोल आए और गोम्मट देव की विशेष रूप से अर्चा की। उन्होंने अपने विशेष सहायक पराक्रमी सेनापति एवं मन्त्री हुल्ल द्वारा बेलगोल में निर्मित चतुर्विंशति जिनमन्दिर का नाम ‘भव्यचूड़ामणि’ कर दिया और मन्दिर के पूजन, दान तथा जीर्णोद्धार के लिए ‘सवणेह’ ग्राम का दान कर भगवान् गोम्मटेश के चरणों में अपने राज्य की भक्ति को अभिव्यक्त किया। मन्त्री हुल्ल ने नरेश नरसिंह प्रथम की अनुमति से गोम्मटपुर के तथा व्यापारी वस्तुओं पर लगने वाले कुष्ठ कर (टैक्स) का दान मन्दिर को कर दिया। होयसल राज्य के विघटन पर दक्षिण भारत में विजयनगर एक शक्तिशाली राज्य के रूप में उदित हुआ। प्रजावत्सल विजयनगर नरेशों के राज्यकाल में राज्य की विशेष समृद्धि हुई। विजयनगर नरेश सर्वधर्म सद्भाव की परम्परा में अटूट आस्था रखते थे। उनके राज्यकाल में एक बार जैन एवं वैष्णव समाज में गम्भीर मतभेद हो गया। जैनियों में से आनेयगोण्डि आदि नाडुओं ने राजा बुक्काराय से न्याय के लिए प्रार्थना की। राजा ने जैनियों का हाथ वैष्णवों के हाथ पर रखकर कहा कि धार्मिकता में जैनियों और वैष्णवों में कोई भेद नहीं है। जैनियों को पूर्ववत् ही पञ्चमहावाद्य और कलश का अधिकार है। जैन दर्शन की हानि व वृद्धि को वैष्णवों को अपनी ही हानि व वृद्धि समझना चाहिए। न्यायप्रिय राजा ने श्रवणबेलगोल के मन्दिरों की समुचित प्रबन्ध व्यवस्था और राज्य में निवास करने वाले विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में सद्भावना की कड़ी को जोड़कर भगवान् गोम्मटेश के चरणों में श्रद्धा के सुमन अर्पित किए थे। वास्तव में भगवान् गोम्मटेश राष्ट्रीय एकता एवं विश्वबन्धुत्व के अनुपम उपमेय हैं।

मैसूर राज्यवंश आरम्भ से ही भगवान् गोम्मटेश की असीम भक्ति के लिए विख्यात रहा है। इस तीर्थ की प्रबन्ध व्यवस्था एवं विकास में मैसूर नरेशों, मन्त्रियों, राज्य अधिकारियों एवं जनसाधारण का विशिष्ट सहयोग रहा है।

श्रवणबेलगोल के मन्दिरों पर आई भयंकर विपदा को अनुभव करते हुए मैसूर नरेश चामराज ओडेयर ने बेलगोल के मन्दिरों की जमीन को ऋण से मुक्त कराया था। एक विशेष आज्ञा द्वारा उन्होंने मन्दिर को रहन करने व कराने का निषेध किया था। श्रवणबेलगोल के जैन मठ के परम्परागत गुरु चारुकीर्ति जी तेलगु सामन्त के त्रास के कारण अन्य किसी स्थान पर सुरक्षा की दृष्टि से चले गये थे। मैसूर नरेश ने उन्हें ससम्मान वापिस बुलाया और पुनः मठ में प्रतिष्ठित करके श्रवणबेलगोल की ऐतिहासिक परम्परा को प्राणवान् बनाया। जैन शिलालेख संग्रह में संग्रहित अभिलेख ८४ (२५०), १४० (३५२), ४४४ (३६५), ८३ (२४६), ४३३ (३५३), ४३४ (३५४) मैसूर राज्यवंश की गोम्मटस्वामी में अप्रतिम भक्ति के द्योतक हैं। मैसूर राज्यवंश एवं उसके प्रभावशाली जैनेतर पदाधिकारियों की भगवान् गोम्मटेश के चरणों में अटूट आस्था का विवरण देते हुए श्वेताम्बर मुनि श्री शील विजय जी ने अपनी दक्षिण भारत की यात्रा (वि० सं० १७३१-३२) में लिखा है—

“मैसूर का राजा देवराय भोज सरीखा दानी है और मद्य-मांस से दूर रहने वाला है। उसकी आमदनी ६५ लाख की है। जिसमें से १८ लाख धर्म कार्य में खर्च होता है। यहाँ के श्रावक बहुत धनी, दानी और दयापालक हैं। राजा के ब्राह्मण मंत्री विशालाक्ष (वेलान्दुर पंडित) विद्या, विनय और विवेकयुक्त हैं। जैन धर्म का उन्हें पूरा अभ्यास है। जिनागमों की तीन बार पूजा करते हैं, नित्य एकाशन करते हैं और भोजन में केवल १२ वस्तुएँ लेते हैं। प्रतिवर्ष माघ की पूर्णों को गोम्मटस्वामी का एक सौ आठ कलशों से पंचामृत अभिषेक कराते हैं। बड़ी भारी रथ यात्रा होती है।” (नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य का इतिहास, पृ० ५५६)।

मैसूर राज्यवंश परम्परा से भगवान् बाहुबली के मस्तकाभिषेक में श्रद्धा से हचि लेता आया है। सन् १८२६ में आयोजित मस्तकाभिषेक के अवसर पर संयोगवश श्रवणबेलगोल में महान् सेनापति चामुण्डराय के वंशज, मैसूर नरेश कृष्णराज बडेयर के प्रधान अंगरक्षक की मृत्यु हो गई थी। उनके पुत्र पुट्ट देवराज अरसु ने अपने पिता की पावन स्मृति में गोम्मटस्वामी की वार्षिक पाद पूजा के लिए उक्त तिथि को १०० ‘वरह’ का दान दिया। गोम्मटेश्वर तीर्थक्षेत्र की पूजा-अर्चा आदि के लिए इसी प्रकार से अनेक भक्तिपरक अभिलेख श्रवणबेलगोल से प्राप्त होते हैं।

श्रवणबेलगोल स्थित भगवान् गोम्मटस्वामी की विशाल एव उत्तुंग प्रतिमा का रचनाशिल्प एवं कला कौशल दर्शनार्थियों को

मन्त्रमुग्ध कर देता है। ऐसी स्थिति में कला प्रेमियों को अनायास जिज्ञासा होती है कि आज से लगभग १००० वर्ष पूर्व भगवान् बाहुबली की इतनी विराट् मूर्ति का निर्माण कैसे किया गया होगा, किस प्रकार इस विशालकाय मूर्ति को पर्वत पर लाया गया होगा और कैसे इसे पर्वत पर स्थापित किया गया होगा। इन्द्रगिरि पर्वत पर स्थित भगवान् गोम्मटेश्वर की प्रतिमा के निर्माण, कला-कौशल, रचना-शिल्प आदि के सम्बन्ध में महान् पुरातत्त्ववेत्ता श्री के० आर० श्रीनिवासन् द्वारा प्रस्तुत शोधपूर्ण जानकारियाँ अत्यन्त उपादेय हैं। विद्वान् लेखक ने भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित 'जैन कला एवं स्थापत्य' खंड २ के अन्तर्गत 'दक्षिण भारत' (६०० से १००० ई०) की मूर्ति कला का विवेचन करते हुए अपनी मान्यताओं को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

“श्रवणबेलगोल की इन्द्रगिरि पहाड़ी पर गोम्मटेश्वर की विशाल प्रतिमा मूर्तिकला में गंग राजाओं की और, वास्तव में, भारत के अन्य किसी भी राजवंश की महत्तम उपलब्धि है। पहाड़ी की १४० मीटर ऊँची चोटी पर स्थित यह मूर्ति चारों ओर से पर्याप्त दूरी से ही दिखाई देती है। इसे पहाड़ी की चोटी के ऊपर प्रक्षिप्त ग्रेनाइट की चट्टान को काटकर बनाया गया है। पत्थर की सुन्दर रवेदार उकेर ने निश्चय ही मूर्तिकार को व्यापक रूप से संतुष्ट किया होगा। प्रतिमा के सिर से जाँघों तक अंग-निर्माण के लिए चट्टान के अवांछित अंशों को आगे, पीछे और पार्श्व से हटाने में कलाकार की प्रतिभा श्रेष्ठता की चरम सीमा पर जा पहुँची है। × × × पार्श्व के शिलाखण्डों में चीटियों आदि की बाँवियाँ अंकित की गयी हैं और कुछेक में से कुक्कुट-सर्पों अथवा काल्पनिक सर्पों को निकलते हुए अंकित किया गया है। इसी प्रकार दोनों ही ओर निकलती हुई माधवी लता को पाँव और जाँघों से लिपटती और कंधों तक चढ़ती हुई अंकित किया गया है, जिनका अंत पुष्पों या बेरियों के गुच्छों के रूप में होता है। × × × यह अंकन किसी भी युगके सर्वोत्कृष्ट अंकनों में से एक है। नुकीली और संवेदनशील नाक, अर्धनिमीलित ध्यानमग्न नेत्र, सौम्यस्मित-ओष्ठ, किञ्चित् बाहर को निकली हुई ठोड़ी, सुपुष्ट गाल, पिण्डयुक्त कान, मस्तक तक छाये हुए घुंघराले केश आदि इन सभी से आकर्षक, वरन् देवात्मक, मुखमण्डल का निर्माण हुआ है। आठ मीटर चौड़े बलिष्ठ कंधे, चढ़ाव-उतार रहित कुहनी और घुटनों के जोड़, संकीर्ण नितम्ब जिनकी चौड़ाई सामने से तीन मीटर है और जो बेडौल और अत्यधिक गोल हैं, ऐसे प्रतीत होते हैं मानो मूर्ति को संतुलन प्रदान कर रहे हों, भीतर की ओर उरेखित नालीदार रीढ़, सुदृढ़ और अडिग चरण, सभी उचित अनुपात में, मूर्ति के अप्रतिम सौंदर्य और जीवन्तता को बढ़ाते हैं, साथ ही वे जैन मूर्तिकला की उन प्रचलित परम्पराओं की ओर भी संकेत करते हैं जिनका दैहिक प्रस्तुति से कोई सम्बन्ध न था— कदाचित् तीर्थंकर या साधु के अलौकिक व्यक्तित्व के कारण, जिनके लिए मात्र भौतिक जगत् का कोई अस्तित्व नहीं। केवली के द्वारा त्याग की परिपूर्णता-सूचक प्रतिमा की निरावरणता, दृढ़ निश्चयात्मकता एवं आत्मनियन्त्रण की परिचायक खड्ग-गासन-मुद्रा और ध्यानमग्न होते हुए भी मुखमण्डल पर झलकती स्मिति के अंकन में मूर्तिकार की महत् परिकल्पना और उसके कला-कौशल के दर्शन होते हैं। सिर और मुखाकृति के अतिरिक्त हाथों, उंगलियों, नखों, पैरों तथा एड़ियों का अंकन इस कठोर दुर्गम चट्टान पर जिस दक्षता के साथ किया गया है, वह आश्चर्य की वस्तु है। सम्पूर्ण प्रतिमा को वास्तव में पहाड़ी की ऊँचाई और उसके आकार-प्रकार ने संतुलित किया है तथा परम्परागत मान्यता के अनुसार जिस पहाड़ी चोटी पर बाहुबली ने तपश्चरण किया था वह पीछे की ओर अवस्थित है और आज भी इस विशाल प्रतिमा को पैरों और पार्श्वों के निकट आधार प्रदान किये हुए है, अन्यथा यह प्रतिमा और भी ऊँची होती। जैसा कि फर्ग्युसन ने कहा है : 'इससे महान और प्रभावशाली रचना मिश्र से बाहर कहीं भी अस्तित्व में नहीं है और वहाँ भी कोई ज्ञात प्रतिमा इसकी ऊँचाई को पार नहीं कर सकी है।' × × × इसके अतिरिक्त है समूचे शरीर पर दर्पण की भाँति चमकती पालिश जिससे भूरे-स्वेत ग्रेनाइट प्रस्तर के दाने भव्य हो उठे हैं; और भव्य हो उठी है इसमें निहित सहस्र वर्ष से भी अधिक समय से विस्मृत अथवा नष्टप्राय वह कला जिसे सम्राट् अशोक और उसके प्रपौत्र दशरथ के शिल्पियों ने उत्तर भारत में गया के निकट बराबर और नागार्जुनी पहाड़ियों की त्राजीविक गुफाओं के सुविस्तृत अंतः भागों की पालिश के लिए अपनाया था। × × × मूर्ति के शरीरांगों के अनुपात के चयन में मूर्तिकार पहाड़ी-चोटी पर निरावृत्त मूर्ति की असाधारण स्थिति से भली-भाँति परिचित था। यह स्थिति उस अण्डाकार पहाड़ी की थी जो मीलों विस्तृत प्राकृतिक दृश्यावली से घिरी थी। मूर्ति वास्तविक अर्थ में दिगम्बर होनी थी, अर्थात् खुला आकाश ही उसका वितान और वस्त्राभरण होने थे। मूर्तिकार की इस निस्सीम व्योम-वितान के नीचे अवस्थित कलाकृति को स्पष्ट रूप से इस पृष्ठभूमि के अंतर्गत देखना होगा और वह भी दूरवर्ती किसी ऐसे कोण से जहाँ से समग्र आकृति दर्शक की दृष्टि-सीमा में समाहित हो सके। ऐसे कोण से देखने पर ही शरीरांगों के उचित अनुपात और कलाकृति की उत्कृष्टता का अनुभव हो सकता है।” (पृष्ठ २२५-२२७)

गोम्मटेश्वर द्वार के बायीं ओर एक पाणान पर अंकित शिलालेख ८५ (२३४) में कन्नड कवि वोप्पण 'सुजनोत्तम' ने भगवान् गोम्मटेश्वर के अलौकिक विग्रह के निर्माण, रचना-कौशल, जनश्रुतियों आदि का हृदयग्राही विवेचन किया है। बत्तीस पलों में प्रस्तुत की गई यह काव्यात्मक प्रशस्ति वास्तव में कविराज वोप्पण के मुख में प्राकृतिक रूप से स्थित बत्तीस दांतों की सम्मिलित पूजा है। भगवान् गोम्मटेश्वर की कलात्मक प्रतिमा की प्रशंसा में कवि का कला प्रेमी मन इस प्रकार से अभिव्यक्त हुआ है—



अतितुंगाकृतिया दोडागददरोत्सौन्दर्यमौन्नत्यम्  
 नुतसौन्दर्यमुमागे मत्ततिशयंतानागदौन्नत्यम् ।  
 नुतसौन्दर्यमुमूर्जितातिशयम् तन्नल्लि निन्दिहूँ वै  
 क्षितिसम्पूज्यमो गोम्मटेश्वर जिनश्रीरूपमात्मोपमं ।

× × ×

मरेदुं पारदु मेले पक्षिनिवहं कक्षद्वयोद्देशदोल्  
 मिरुगुत्तुं पोरपोण्णुगुं सुरभिकाशमीरारुणच्छायमी-  
 तेरदाश्चर्यमनीत्रिलोकद जनं तानेय्दे कण्डिहूँ दा-  
 न्नेरेवन्नेट्टने गोम्मटेश्वरजिनश्री मूर्तियं कीर्तिसल ॥

अर्थात् 'जब मूर्ति बहुत बड़ी होती है तब उसमें सौन्दर्य प्रायः नहीं आता । यदि बड़ी भी हुई और सौन्दर्य भी हुआ तो उसमें दैवी प्रभाव का अभाव हो सकता है । पर यहाँ इन तीनों के मिश्रण से गोम्मटेश्वर की छटा अपूर्व हो गई है । कवि ने एक दैवी घटना का उल्लेख किया है कि एक समय सारे दिन भगवान् की मूर्ति पर आकाश से 'नमेरु' पुष्पों की वर्षा हुई जिसे सभी ने देखा । कभी कोई पक्षी मूर्ति के ऊपर होकर नहीं उड़ता । भगवान् की भुजाओं के अधोभाग से नित्य सुगन्ध और केशर के समान रक्त ज्योति की आभा निकलती रहती है ।

विगत एक सहस्राब्दी से भगवान् बाहुबली की अनुपम प्रतिमा जन-जन के लिए वन्दनीय रही है । दिग्विजयी सम्राटों, कुशल मन्त्रियों, शूरवीर सेनापतियों, मुसलमान राजाओं, अंग्रेज गवर्नर जनरल, देश-विदेश के कलाविदों एवं जनसाधारण ने इस मूर्ति में निहित सौन्दर्य की मुक्त कंठ से सराहना की है । कायोत्सर्ग मुद्रा में यह महान् मूर्ति जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति का सन्देश दे रही है । सुप्रसिद्ध कला-प्रेमी एवं चिन्तक श्री हेनरिक जिम्मेर ने भगवान् गोम्मटेश की कलात्मक एवं आध्यात्मिक सम्पदा का निरूपण करते हुए लिखा है—

'आकृति एवं अंग-प्रत्यंग की संरचना की दृष्टि से यद्यपि यह प्रतिमा मानवीय है, तथापि अधर लटकती हिमशिला की भाँति अमानवीय, मानवोत्तर है, और इस प्रकार जन्म-मरण रूप संसार से, दैहिक चिन्ताओं से, वैयक्तिक नियति, इच्छाओं, पीड़ाओं एवं घटनाओं से सफलतया असंपृक्त तथा पूर्णतया अन्तर्मुखी चेतना की निर्मल अभिव्यक्ति है । ...किसी अभौतिक अलौकिक पदार्थ से निर्मित ज्योतिस्तंभ की नाई वह सर्वथा स्थिर, अचल और चरणों में नमित एवं सोत्साह पूजनोत्सव में लीन भक्त-समूह के प्रति सर्वथा निरपेक्ष पूर्णतया उदासीन खड्गासीन है ।' (महाभिषेक स्मरणिका, पृ० १८५)

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की गौरवशाली परम्परा में राष्ट्रीय नेताओं एवं उदार धर्माचार्यों की प्रेरणा से भारतीय जन-मानस में प्राचीन भारत के गौरव के प्रति विशेष आकर्षण का भाव बन गया । स्वतन्त्र भारत में प्राचीन भारतीय विद्याओं के उन्नयन एवं संरक्षण के लिए विशेष प्रयास किए गए हैं । भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू का भारतीय विद्याओं एवं इतिहास से जन्मजात रागात्मक सम्बन्ध रहा है । महान् कलाप्रेमी श्री नेहरू ने ७ सितम्बर १९५१ को अपनी एकमात्र लाडली सुपुत्री इन्दिरा गांधी के साथ भगवान् गोम्मटेश की प्रतिमा के दर्शन किए थे । भगवान् गोम्मटेश के लोकोत्तर ऋषि के दर्शन से वह भाव-विभोर हो गए और उन गौरवशाली क्षणों में उन्हें अपने तन-मन की सुध नहीं रही । आत्मविस्मृति की इस अद्भुत घटना का उल्लेख करते हुए उन्होंने मठ की पुस्तिका में लिखा है— I came, I saw and left enchanted ! (मैं यहाँ आया, मैंने दर्शन किए और विस्मय-विमुग्ध रह गया !)

वास्तव में भारतीय कलाकारों ने इस अद्वितीय प्रतिमा में इस देश के महान् आध्यात्मिक मूल्यों का कुशलता से समावेश कर दिया है । इसीलिए इस प्रतिमा की शरण में आए हुए देश-विदेश के पर्यटक एवं तीर्थयात्री अपनी-अपनी भाषा एवं धर्म को विस्मरण कर विश्व-बन्धुत्व के उपासक बन जाते हैं । भगवान् गोम्मटेश की इस अलौकिक प्रतिमा ने विगत दस शताब्दियों से भारतीय समाज विशेषतः कर्नाटक राज्य की संस्कृति को प्राणवान् बनाने में अपूर्व सहयोग दिया है । भगवान् बाहुबली के इस अपूर्व जिन बिम्ब के कारण ही श्रवणबेलगोल राष्ट्रीय तीर्थ बन गया है । इस महान् कलाकृति के अवदान से प्रेरित होकर श्री न० स० रामचन्द्रैया ने विनीत भाव से लिखा है—

"बाहुबली की विशाल हृदयता को ही इस बात का श्रेय है कि सभी देशों और अंचलों से, उत्तरोत्तर बढ़ती हुई संख्या में, यहाँ आने वाले तीर्थ-यात्री भाषा तथा धर्म के भेदभाव को भूल जाते हैं । न केवल जैनों ने, बल्कि शैवों और वैष्णवों ने भी, यहाँ मन्दिर बनवाये हैं और इस जैन तीर्थ-स्थान को अनेक प्रकार से अलंकृत किया है । गोम्मट ही इस आध्यात्मिक साम्राज्य के चक्रवर्ती सम्राट् हैं । साहित्य एवं कला के साथ यहाँ धर्म का जो सम्मिश्रण हुआ है उसके पीछे इसी महामानव की प्रेरणा थी । कर्नाटक की संस्कृति में जो कुछ भी महान् है उस सबका

वह प्रतीक बन गया है। कालिदास कह गये हैं कि महान् लोगों की आकांक्षाएं भी महान् ही होती हैं—‘उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना ।’ बाहुबली मानव-उत्कृष्टता के उच्चतम शिखर पर पहुंचे हुए थे। मानव इतिहास में इससे अधिक प्रेरणादायक उदाहरण और कोई नहीं मिल सकता। बोधधर्म के वृत्त की एक पंक्ति यहां उद्धृत करने योग्य है। ‘एमक्षिति सम्पूज्यमो गोम्मटेश्वर जिनश्रीरूप आत्मोपमम् !’ इससे हमें वाल्मीकि की सुविदित उपमा का स्मरण हो आता है—‘गगनं गगनाकारं सागरं सागरोपमम् ।’ गोम्मट की भव्य तथा विशाल उत्कृष्टता अद्वितीय है। (मैसूर, पृ० १४३)

भगवान् गोम्मटेश के इसी भव्य एवं उत्कृष्ट रूप के प्रति श्रद्धा अर्पित करने की भावना से देश की लोकप्रिय प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भगवान् बाहुबली सहस्राब्दी प्रतिष्ठापना समारोह के अवसर पर हेलीकाप्टर से गगन-परिक्रमा करते हुए भगवान् गोम्मटेश का सद्यजात सुगन्धित कुसुमों एवं मंत्र-पूत रजत-गुणों से अभिषेक किया था। इसी अवसर पर आयोजित एक विशाल सभा में भगवान् गोम्मटेश के चरणों में श्रद्धा अभिव्यक्त करते हुए उन्होंने इस महान् कला-निधि को शक्ति और सौन्दर्य का, बल का प्रतीक बतलाया था। महामस्तकाभिषेक के आयोजन की संस्तुति करते हुए उन्होंने इस अवसर को भारत की प्राचीन परम्परा का सुन्दर उदाहरण कहा था। भगवान् गोम्मटेश की विशेष वन्दना के निमित्त वह अपने साथ आस्था का अर्घ्य—चन्दन की माला, चांदी जड़ा श्रीफल और पूजन सामग्री ले गई थीं। उपर्युक्त सामग्री को आदरपूर्वक श्रवणबेलगोल के भट्टारक स्वामी को भेंट करते हुए उन्होंने कहा था—“इसे देश की ओर से और मेरी ओर से, अभिषेक के समय बाहुबली के चरणों में चढ़ा दीजिए।”

राष्ट्र की ओर से भगवान् बाहुबली के चरणों में नमन करती हुई श्रीमती इन्दिरा गांधी ऐसी लग रही थीं जैसे मूर्ति प्रतिष्ठापना के समय इन्द्रगिरि पर्वत पर जनसाधारण की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक हजार वर्ष पूर्व की पौराणिक माता गुल्लिकायाज्जी का अनायास ही अवतरण हो गया हो! वास्तव में माता गुल्लिकायाज्जी एवं लोकनायिका श्रीमती इन्दिरा गांधी भारत की समग्र चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाली महान् महिलाएँ हुई हैं। इन दोनों नारीरत्नों द्वारा किए गए भक्तिपूर्वक अनुष्ठान में सम्पूर्ण राष्ट्र की निष्ठा स्वयमेव प्रस्फुटित हो रही है। भगवान् गोम्मटेश अब सिद्धालय में विराजमान हैं और रागभाव से अतीत हैं। अतः आयोजनपूर्वक पूजा-अर्चा का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। किन्तु पूजा-अर्चा की स्थिति में साधक भगवान् गोम्मटेश की अनुभूतियों से तादात्म्य स्थापित कर अक्षय सुख का अर्जन कर लेता है। इसीलिए भगवान् गोम्मटेश का प्रेरक चरित्र शताब्दियों से लोकमानस की श्रद्धा का विषय रहा है।



[विशेष : प्रस्तुत निबन्ध में चर्चित शिलालेख जैन शिलालेख संग्रह (भाग एक) से उद्धृत किये गए हैं।]